॥ श्री ॥

शुद्ध देव अनुभव विचार.

स्वर्गीय श्रीमद् चिदानन्दजी महाराज रचित

जिसको

हिन्दी जैन कार्यालय की ओरसे कस्तूरचन्द

जवेरचन्द गादिया ने छपाकर

प्रसिद्ध किया

सन १९१२

मूल्य ६ आना.

यह पुस्तक दि कारोनेशन प्रिन्टिंग प्रेस
कालबादेवी बम्बई
में
मगुभाई फतेचन्द कारभारीने छापी

समर्पण पत्रिका
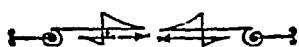
श्रीमान् सेठ रतनलाल जी साहव सूराना

मु० रतलाम (मालवा)

महाशय जी !

आपके सेवामें निवेदन है कि हमने जैन जातिकी विद्या तथा धर्मोन्नति होनेके लिये हिन्दी जैन नामका समाचार पत्र प्रकाशित किया है। और उसीके आधारसे हिन्दी भाषामें जैन धर्मकी पुस्तकें प्रकाशित करनेका संकल्प किया है। आप हमारी ज्ञातिके एक परम माननीय अग्रसर होकर सदैव धर्मोन्नतिमें तत्पर रहते हैं वास्ते यह छोटीसी (हिन्दी जैन पुस्तक मालाका प्रथम पुष्प) "शुद्धदेव अनुभव विचार" नामकी पुस्तक आपकी सेवामें सादर अर्पण करता हूं।

प्रकाशक

कस्तूरचन्द गादिया.

श्रायुत् सठ सा० रतनलालजा सूराना .

रतलाम (मालवा) निवासी .

चित्रशाळा प्रेस, पुणें सिटी.

प्रस्तावना

सर्व आत्मार्थी भव्य जीवोंको विदित हो कि यह "शुद्ध देव अनुभव विचार" ग्रन्थ श्रीमद् जैन धर्म्माचार्य श्री १००८ श्री चिदानन्दजी महाराजका रचा हुआ है। इसमें देवके ऊपर सत्तावन बोल उतार कर हेय, गेय, उपादेय, उत्सर्ग, अपवाद, ये पांच बोल अलग २ करके समझाये हैं। इस ग्रंथमें केवल आत्म विचार भिन्न २ करके हेतु युक्ति सहित दर्शाया है! उक्त महात्मा सम्वत् १९५९ पौष विदि अष्टमी सोमवारके दिन सद्गतिको प्राप्त हुए हैं। उक्त महा-राजका अनुभव और अध्यात्म शैलीका ज्ञान इस ग्रन्थको मनन करनेसे संसारी जीवोंको भली प्रकार प्राप्त होगा।

श्री चिदानन्दजी महाराजके हस्त रचित "शुद्ध देव अनुभव विचार" की असल प्रति मेरे निकट रक्खी हुई थी. सो हिन्दी जैन कार्य्यालयने छपवा कर प्रसिद्ध करने का अनुग्रह किया है; इसके लिये मैं उसके प्रवन्ध कर्ताको कोटिशः धन्यवाद देता हूं। और सब सज्जन पुरुषोंसे प्रार्थना करता हूं कि इस ग्रन्थको एकाग्र चित्तसे पठन तथा मनन करके आत्माका अर्थ करेंगे।

चतुर्विध संघका

दासः—

जमना लाल कोठारी.

॥ श्री शांतिनाथायनमः ॥

मुनि श्री चिदानन्दजी विरचित

शुद्धदेव अनुभव विचार

॥ दोहा ॥

शुद्ध देव अनुभव कहूं, शासन पति महाराज ।
श्रुतदेवी गुरु सुमरतां, सफल होत सब काज ॥ १ ॥

१—प्रथम व्यवहार से देवका स्वरूप कहते हैं।–कि:–जो १८ दूषण करके रहित और १२ गुण ३४ अतिशय ३५ वाणि करके युक्त हो उसको व्यवहार करके देव कहते हैं। १२ गुणोंमें ४ तो मूल अतिशय और ८ महा प्रातिहार्य हैं। यह शास्त्रों मे प्रसिद्ध है, इसलिये यहां नही लिखे, और अन्तराय कर्म के नष्ट होनेसे ५ लब्धि पैदा होती है। सो कहते हैं कि दान देने में अन्तराय है सो प्रथम दोष दानान्तराय है। दूसरा लाभ अन्तराय है। लाभ न होने पावे यह दूसरा दोष है, भोग अन्तराय अर्थात् भोग न करने पावे यह तीसरा दूषणहै। चौथावस्तु उपभोगअन्तराय अर्थात् वारम्वार वस्तुको न भोगसके पांचमा वीर्य्य अन्तराय अर्थात् पराक्रम पूरा नहो, और यह पांचों वातें जिसमें पाई जावें.वो इन दूषण से रहित है। क्योंकि यह पांच दूषण तीर्थंकर में नहीं पाये जावें, क्योंकि देखो ग्रहस्थावस्था में भी जैसा तीर्थंकर दान देते हैं, तैसा कोई दूसरा मनुष्य नहीं दे सक्ता है। फिर साधु होनेके वाद केवल

ज्ञान उपार्जन करके अनेक भव्य जीवोंको उपदेश अर्थात् आत्म स्वरूप बताते हैं, वो आत्म स्वरूपका बताना सोही उनका दान है। दूसरा लाभ भी उसको ऐसा है, कि दूसरे चक्रवर्ती वासुदेव आदिकको न होगा, और दूसरा जोकि ज्ञान, दर्शन, चारित्र अनादि कालका ओधान था, सोकर्मोंके क्षय होनेसे आवर भाव हुआ, सो फिर कभी ओधान न होगा, यह अक्षय लाभ हुआ। तीसरा भोगका सुनो कि जो ज्ञान, दर्शन, चारित्र उत्पन्न हुए वे फिर कभी नष्ट न होंगे, इसलिये उन ज्ञान दर्शन चारित्रकाही भोग हुआ। चौथा भोग कहते हैं, कि वारम्वार अपनी आत्मा में विरमण करना उससे कभी अलग न होना उसी का नाम उपभोग है। पांचवा वीर्यका अर्थ करते हैं, कि कर्मोंके क्षय होने से पौद्गलिक वीर्य्य नष्ट हुआ, और आत्म वीर्य्य अर्थात् आत्माकी शक्ति प्रगट हुई, सो वो शक्ति कैसी है, कि जो कर्म संयुक्त जीव हैं, उन जीवोंमें से चक्रवर्ती, वलदेव, वासुदेव किसी में भी वो शक्ति न होगी, ऐसी उनमें अनन्त शक्ति है। क्योंकि देखो वो इस शक्ति से भूत, भविष्यत्, वर्तमान कालका भाव और छः पदार्थों का अनन्त गुण पर्यापरूप उत्पाद व्यय ध्रुवताको एक समयमें देखतेहैं। वीर्य्य अर्थात् अनन्त शक्ति है, सो इन पांच दूषणोंके प्रभुमें गुण हो जाते हैं, और जिसमें यह पांच नहीं उसको दूषण सहित कहते हैं। छठा परमेश्वरमें हंसी नहीं, क्यों कि देखो हंसी उसीको आवेगी जो अपूर्व वातको देखेगा, सो अर्हन्त देवके ज्ञानमें कोई अपूर्व नहीं है, कि जिससे हंसी आवे, ७ रति अर्थात् प्रीति भी किसी पदार्थमें नहीं, १८ अरति उसको कहतेहैं, कि-जो चीजकी प्राप्ति न हो, उसके प्राप्त होनेका यत्न करे। परमेश्वरको सर्व चीज प्राप्त है, सो उनमें अरति भी नहीं है। ९ भय सो परमेश्वरको किसीका

भय नहीं १० जुगुप्सा अर्थात् किसी मलीन चीजसे ग्लानि करना सो भी भगवतके नहीं ११ शोक अर्थात् चिन्ता करना सो भी उनमें नहीं १२ काम अर्थात् स्त्री, पुरुष, नपुंसक इन तीनों वेदोंका विकार भी नहीं, १३ मिथ्यात्व सो भी नहीं १४ अज्ञान सो भी नहीं १५ निद्रा सो भी नहीं १६ अव्रत सो भी नहीं १७ राग सो किसीसे नहीं १८ द्वेष सो भी किसीसे नहीं इन १८ दूषणों करके रहित हो, सो व्यवहारसे देव है। परन्तु १८ दूषणमेंसे एक भी दूषण जिसमें होगा, सो व्यवहारसे भी देव नहीं। इस रीतिसे ३४ अतिशय ३५ वाणीका विस्तार भी शास्त्रोंमें कहा है, इस लिये मैंने नहीं कहा क्यों कि यह बातें सर्व जैनियोमें प्रसिद्ध है। इस रीतिसे जिसका ऐसा स्वरूप हो, उसको व्यवहारसे देव कहना। अब यहां इस व्यवहारिक देवमे भव्यजीवोंको ज्ञेय, हेय, उपादेय, उत्सर्ग, अपवाद दिखाते हैं। प्रथम ज्ञेय क्या चीज है, सो ज्ञेय नाम जाननेका है, तो इस जगह देव और कुदेवका स्वरूप जाननेके योग्य है, इन दोनोंमेंसे कुदेवको हेय अर्थात् छोड़नेके योग्य जानकर छोड़े। इस जगह हेय हुआ, और देवको उपादेय अर्थात् ग्रहण करनेके योग्य जानकर ग्रहण करे, यह उपादेय हुआ। उत्सर्ग इस जगह क्या चीज है, सो कहते हैं, कि अर्हन्तके ज्ञान, दर्शन, चारित्र अव्यावाधादिक निज गुणको निमित्त कारण जानकर विचारना सो उत्सर्गमार्ग है। अब इस जगह अपवाद मार्ग कौनसा है। सो दिखाते हैं, कि जब देवके निज गुणमें चित्त न ठहरे, अथवा देवके निज गुण विचारनेकी समझ न होय, तो वाह्य गुणरूप जो ३४ अतिशय ३५ वाणि ८महा प्रति हार्य आदि हैं, सो विचारे। अथवा हे प्रभु तू तारने वाला है, तू मुझको तार अर्थात् मोक्ष दे। मैं तेरे ही आधीन हूं, मैं तेरा सेवक हूं, हे नाथ! तेरे सिवाय और कोई नहीं मुझे तारने

वाला । इत्यादिक अनेक निमित्त कारण देवको ही मुख्य मानकर स्तुति करे वो अपवाद मार्ग है । अव दूसरी रीति से भी इन्हीं पांच वोलों को उतार ते हैं, कि जिस भव्य जीवने शुद्ध गुरू की चरण सेवा में आत्म स्वरूप को जाना है उसके वास्ते व्यवहार से देवके स्वरूप मे इन ही पांच बोलो को दूसरी रीति से उतार कर दिखाते हैं । क्योंकि ज्ञेय से तो देवका स्वरूप जानना, कि जो रीति हम ऊपर देवके स्वरूप की लिख आये हैं वो ज्ञेय है, और देवमें हेय क्या चीज है, सो दिखलाते हैं कि जिस वक्त मे भव्यजीव देवके अन्तरंग गुणो का स्मरण करने लगे, उस समयमे बाह्य जो देव कृत अतिशय और महा प्रतिहार्यादि हैं, उनको होय अर्थात् छोड़ने के योग्य जाने । और भगवंतके ज्ञान दर्शनादि जो निज गुण हैं, सो 'उपादेय' अर्थात् ग्रहण करने के योग्य है। तथा उत्सर्ग मार्ग से भगवंतके गुणोका अपने आत्म गुण मे अभेद से विचारे जवतक चित्त की वृत्ति भगवतके गुण और आत्मगुणमें अभेद से विचारे, जव तक चित्त की वृत्ति भगवत के गुण और आत्म गुणमें अभेद रहे, तब तक उत्सर्ग मार्ग है। और जव उस अभेद वृत्ति मे स्थिर न रहे, तव वृत्ति को साह्य देनेके वास्ते अपवाद मार्ग से प्रभु के निज गुणोंको विचारे सो अपवाद मार्ग है । इस रीति से व्यवहार से देवका स्वरूप कहा ॥

अव निश्चय से देवका स्वरूप कहते हैं । निश्चय अर्थात् शुद्ध व्यवहार से देव अपनी ही आत्मा है। क्यों कि संग्रह नय की सत्ता देखता हुआ जीवका स्वरूप ज्ञान, दर्शन, चारित्र वीर्यमयी शक्ति भाव अर्थात् त्रोधानमें दवा हुआ में सिद्धके समान तरण तारण अपनी आत्मा ही है । इसलिये शुद्ध देव अपनी ही

आत्मा है, और पंच परमेष्ठी तो निमित्त कारण है। इसीलिये श्री हेमाचार्यजीने वीतराग के स्तोत्र में पंच परमेष्ठी से आत्मा को अधिक कही है, सो श्लोक दिखाते हैं:—

॥ श्लोक ॥

य: परमात्मा परं ज्योति: परम: परमेष्ठिना ॥
आदित्य वरणो तमस: परस्ता दामने तिर्यं ॥ १ ॥
सर्वे ये नोद मूल्यन्त समूला क्लेश पादाय इत्यादि"

अब इस निश्चय अर्थात् शुद्ध व्यवहारमे भी ज्ञेय, हेय, उपादेय, उत्सर्ग और अपवाद उतार कर दिखाते हैं। इस निश्चय अर्थात् शुद्ध व्यवहार में ज्ञेय क्या चीज है, कि उस आत्मा का स्वरूप जाने, और उस आत्म स्वरूप में ही गुरू बुद्धि माने। क्योंकि शास्त्रोंने ऐसा कहाहै, यदि उक्तं "तत्व ग्रहणाति इति गुरु." इसका अर्थ ऐसा हुआ, कि जो तत्वको ग्रहण करे उसीका नाम गुरुहै। तो यह आत्माही तत्व ग्रहण करनेवाला है, नतु अन्यके ग्रहणसे कोई कार्य्य सिद्धि। इसलिये आत्माही गुरु ठहरा। और धर्मको जानो, कि आत्माका भावसोही धर्म है। क्योंकि शास्त्रोंमें कहाहै, यदि उक्त 'वस्तु सभावोधम्मो' इसका अर्थ यह है, कि—जो वस्तुका स्वभावहो, सोही उसका धर्महै। तो आत्माका स्वभाव ज्ञान, दर्शन, चारित्र, वीर्य मयीहै। इसलिये आतमाका स्वभाव सोही धर्म ठहरा, इसरीतिसे आत्माको जानना उसीका नामज्ञेयहै, और पेश्तर जो निमित्त कारण देवका स्वरूप उपर लिख आयेहैं, उसकोभी जाने. सो इस जगह जो कि निमित्त कारण आलम्बन पेश्तर लिख आयेहैं उसको हेय जानकर छोड़े और निरालम्बन होकर अपनी आत्माको

ग्रहण करता हुआ आत्म स्वरूपकोही विचारे इसका नाम उपादेय है। अब उत्सर्ग मार्गसे जो स्वरूप ऊपर लिखाहै, उसीसे निर्विकल्प एकत्वपनेसे जो विचार सो उत्सर्ग मार्ग है। उस निर्विकल्पमें जो चित्तकी वृत्ति न ठहरे तो अपवाद मार्ग अंगीकार करे, तब सविकल्प प्रथक् सपरि विचार अर्थात् सविकल्पसे आत्मध्यान करे, उसका नाम अपवाद मार्गहै। अब इस जगह जिज्ञासुके समझानेके वास्ते सविकल्प और निर्विकल्पका अर्थ दिखानेके लिये द्रष्टान्त कहकर द्राष्टान्त दिखाते हैं। देखो! सविकल्प उसको कहते हैं, कि जिस चीजका विचार करे, उसी चीजके अवयवोंका जुदा २ स्वरूप विचारे अन्यका नही। इस जगह द्रष्टान्त दिखाते हैं। कि—जैसे गऊका स्वरूप विचारने लगे, तब गऊके अवयवोंको स्मरणकरे किस-रीतिसे कि गऊके सींग होते हैं, गऊके पूंछ होतीहै, गऊके एक पगमें दोखुर होतेहैं, और गऊके सासन अर्थात् गलेका चमडा लटकता रहताहै, उसरीतिसे सर्व अवयवोंको विचारना, इस विचारका नाम गऊका सविकल्प विचार अर्थात् ध्यान है। निर्वि-कल्प उसे कहते हैं कि गऊके अवयवोंको जुदा २ न विचारे, केवल ऐसा विचारे कि गऊहै, इसको निर्विकल्प ध्धान कहते हैं। यहतो द्रष्टान्त हुआ, अब द्राष्टान्त सुनो, कि अपनी आत्माका अव-यवो सहित ध्यान करे कि मेरेमें अनन्त चारित्रहै, मैं अनन्त वीर्य संयुक्तहूं, मैं अव्याबाधहूं, मैं अमूर्तिक हूं, मैं निरंजनहूं, मैं नित्य बुद्ध हूं, मैं अजर हूं, अविनाशी हूं, इत्यादिक अनेक गुणोंको जुदे २ अपने आत्माके ही अवयवोंका विचार करना उसका नाम सविकल्प ध्यान है। जब इन अवयवोंका विचार छोड़कर सब अवयवों संयुक्त केवल

आत्माका ही एक रूप करके जो विचार अर्थात् एकत्व मे लय लीन हो जाना उसका नाम निर्विकल्प है। इस रीतिसे सविकल्प ध्यानका दृष्टान्त और द्राष्टान्त कहा॥

अब तीसरा द्रव्य देवका स्वरूप कहते हैं; कि जिस वक्त तीसरे भव मे पुण्यानुबन्धी पुण्य के उदय से तीर्थंकर नाम कर्म बांधा, अथवा देवलोक वा नारकी में जो तीर्थंकरका जीव है, वो नयगमनय से आगामी अपेक्षा लेकर द्रव्य देव है। ऊपर लिखे सबको जानना सो तो ज्ञेय है। पुण्यानुबन्धी पुण्य तो इस जगह हेय है, और नयगमनय की अपेक्षा से तीर्थ कर नाम कर्म बांधना उपादेय है. उत्सर्ग से तो तीसरे भवके स्वरूपको छोडकर देव लोक वा नारकी में गये उस वक्त नयगम सग्रह नयकी सत्तासे देवपना है, और अपवाद से पुण्यानुबन्धी पुण्य वा तीसरे भव तीर्थंकर नाम कर्म बांधा यह विचार भी अपवाद है। अब दूसरी रीतिसे भी इसी स्वरूप को कहते है, कि ऊपर लिखे समेत तीर्थ कर नाम कर्म हेतु कि-जिस से कर गोत बांधा सो तो सब ज्ञेय है। इसमे उपादेय ऐसे हैं, कि यह तीर्थ कर होंगे और अनेक भव्य जीवोको तारेंगे। इस गुणको अंगीकार करे. अथवा अपनी आत्माको कहे, कि-तूभी ऐसा कर ऐसा विचारना सो उपादेय है। बाकी पुण्य बन्धनादि सब से जानना, और उत्सर्ग से उस में उद्यम करना और अपवाद से देवके गुणोंको विचारना, कि-इसने कैसा उत्तम तीर्थंकर नाम उपार्जन किया है, इनसे अनेक जीव तरेंगे॥

अब भाव देवका स्वरूप कहते हैं, कि-जब देव लोक वा नारकी से आयकर माता के पेट में उत्पन्न हुए, और ज्ञान करके

सहित और उस तीर्थ कर नाम कर्मके प्रभाव से माता ने १४ स्वप्न देखे। जिसके बाद इन्द्र अवधि ज्ञान से माताके गर्भमें स्थित तीर्थ करको देखकर भक्तिसे प्रफुल्लित होकर विधि सहित नमोत्थुणं आदिस्तुति करे। इस जगह पूजा अतिशय ' अर्हं ' इस शब्दकी अपेक्षा लेकर भाव देव कहा। ऊपर लिखे स्वरूपको जानना सो तो ज्ञेय है, उपादेय इस जगह इस रीतिसे है, कि पूजा अतिशय और ज्ञान आदि उपादेय है, और उत्पन्न होना स्वप्नादिक सब हेय हैं। उत्सर्ग से तो उनकी पूजा अतिशय और ज्ञानादि गुणको ग्रहणकरे, और अपवादसे स्वप्नादिको विचारे। अब दूसरी रीतिसे ऊपर लिखे स्वरूपको निमित्त कारण और अपनी आत्माको उपादान कारण जाने सो तो ज्ञेयहै, निमित्तकी अपेक्षा कार्य्यमें मुख्यहै, परन्तु उपादानसे हेय है। इसलिये निमित्त हेयहुआ, उपादानसे उद्यम करना, कि—मैं भी देवहूं, ऐसा विचार सो उपादेय हुआ, उत्सर्गसे अपनेमें विचारे और उद्यम करेतो मैंभी अपना देवपना प्रगट करूं, और अपवादसे निमित्त देवके गुणोंको विचारना। इसरीतिसे भावदेवमें ज्ञेय, हेय, उपादेय और उत्सर्ग अपवाद कहा॥

अब सामान्य देवका स्वरूप कहतेहैं, कि (नमो अरिहन्ताणं) अथवा अरिहन्त ऐसा नाम लेनेसे सर्वदेवोंकी सामान्यपनेसे प्राप्ति अर्थात् शामिल होगये। क्योंकि देखो 'नमो अरिहन्ताणं' कहनेसे तो सर्व देवोंको नमस्कार हुआ, और जिसने चार कर्म क्षय किये, और केवल ज्ञान उत्पन्न किया, अथवा जो तीर्थंकर आदि सर्व सामान्यपनेसे इस अर्हन्त शब्दमें प्राप्तहुए सामान्य देव अर्हन्तहै। अथवा सर्व तीर्थंकरहैं, अथवा सामान्य केवलीने जो कहा स्वरूप उस मे किसीके कहनेमें भेद नहीं, अथवा अनन्त ज्ञान, अनंत दर्शन, अनन्त

अनन्त चारित्र, अनन्तवीर्य, यह सर्वका सामान्य होनेसे सामान्य देव कहते हैं। जो ऊपर लिखे स्वरूपको जानना सो ज्ञेयहै, और एक रूप कथन और ज्ञानादि गुणको ग्रहण करना वा विचारना वो उपादेयहै, बाकी सब हेय हैं। उत्सर्गसे उनके कथनको विचार कर आज्ञाको ग्रहणकरे और अपवादसे कथन वा ज्ञानादि गुणको स्मरण करे ॥

अब विशेष से देवका स्वरूप कहतेहैं, कि जो तीर्थकर होते हैं। उनके गणधर आदिक साधू, साध्वी, श्रावक, श्राविका जबतक रहे, अर्थात् दूसरा तीर्थकर न उत्पन्न होय, तबतक उन्हींकी विशेषता मानते हैं। क्योंकि वर्त्तमान तीर्थकर महाराज निकट उपकारी है, कि—जैसे वर्त्तमान कालमें श्री वर्द्धमान स्वामीको आश्रय लेकरके जो कथन वर्त्तमान कालमें करते हैं, ओर तीर्थ करोंका नाम कथन विषयमे नहीं लेते। इस लिये विशेषता वर्त्तमान कालमे श्रीमहावीर स्वामीकी है। यह विशेष देवका स्वरूप हुआ। अब इसमें वही पांचो बोल उतारतेहैं, कि—ऊपर लिखे को जानना. सो तो ज्ञेय है, और वर्तमान शासन पतिका ही ग्रहण सो 'उपादेय' बाकी सब हेय है। उत्सर्ग से तो वर्त्त-मान तीर्थकर की आज्ञा सहित उद्यम करना, और अपवाद से वर्त्तमान शासन पतिकी आज्ञा को मानना। अब दूसरी रीतिसे कहते हैं. कि ऊपर लिखे को निमित्त और उद्यम करन रूप क्रिया आदिक सब को जानना सो ज्ञेय है, और वर्त्तमान देव की आज्ञा सहित निमित्त कारण जानता हुआ आत्माको उपादान जानकर उद्यम करना सो तो उपादेय, बाकी निमित्तादि सबको हेय जानना, और उत्सर्ग से तो आज्ञा सहित उद्यम आदि क्रिया से गुणको प्रगट करना, तथा अपवाद से केवल विचार करना

तथा गुण प्रगट न होना, इस रीत से अपवाद हुआ। अब चार निक्षेपों से देवका स्वरूप कहते हैं। जिसमें प्रथम नाम निपेक्षा दिखा ते हैं कि जैसे अर्हन्त ऐसा नाम लेने से परमेश्वर का बोध होता है, अथवा किसीका नाम अर्हन्त हो सो देव है इसको नाम निक्षेपा कहते हैं। इसमें भी पांच बोल उतार कर दिखाते हैं कि देखो ऊपर लिखे स्वरूप को जानना सो तो ज्ञेय है, और अर्हन्त इन अक्षरो से परमेश्वर का बोध होना सो अर्हत रूप अक्षर उपादेय है और अर्हत किसीका नाम सो हेय है। उत्सर्ग करके तो अर्हत परमेश्वरका स्वरूप जान कर आत्मामें बोध करना, अथवा परमेश्वर रूप जान कर उसका स्मरण करना और अपवाद से अर्हत इन अक्षरोंका उच्चारण तो करना; परन्तु स्वरूप को न जानना अव दूसरी रीति से भी स्वरूप कहते हैं कि प्रथम तो अर्हत अक्षरों की व्युत्पत्ति सहित अर्थ को जाने, कि अर जो वैरी तिसको जो हने सो अर्हन्त। कर्म रूप शत्रुओं को हनने वाला परमेश्वर होता है। जो इस परमेश्वर को निमित्त कारण मान कर कहे कि मैं भी अपने कर्मको हनू तो अरिहन्त हो जाऊं. इत्यादिक गुणों को जानना, सो तो ज्ञेय, अपनी आत्मा को उपादान समझ कर स्मरण करना सो उपादेय बाकी सब हेय उत्सर्ग से तो अपनी आत्माको अरिहन्त जान कर, और दूसरे अरिहन्त शब्दको निमित्त कारण जान कर दोनोका एक रूप जान कर स्मरण करना और अपवाद से निमित्त अरिहन्त शब्द को ही अपना तरण तारण जान कर स्मरण करना। इस रीतसे नाम निक्षेपा को जाने॥

अव स्थापना निक्षेपा से देवका स्वरूप कहते हैं। सो स्थापना के दो भेद हैं. १ अकृतरम २ कृतरम। सो अकृतरमतो किसीकी वनाई

हुई नहीं, अर्थात् वो शाश्वती जिन प्रतिमा है, सो वो प्रतिमा अनादि नित्य पर्याय है, सो वे जिन प्रतिमा देवलोक और नन्दी श्वरद्वीपमें रूदिक पर्वतोंमें जो जिन प्रतिमा है, सो साश्वती अकृतरम अर्थात् किसीकी बनाई हुई नहीं हैं। कृतिरमके भी दो भेद है। पहला असद्भूत २ सद्भूत। १ सो असद्भूत तो उसे कहते हैं कि जिसमे कोई तरहका आकार न हो, और किसी चीजकी स्थापना करना, जैसे चन्दन आर्य्य आदिककी स्थापना पञ्च परमेष्ठीकी होती है, और उसके सामने अपनी सर्व क्रिया आदिक करते हैं। सद्भूत उसे कहते हैं, कि जैसा भगवानके शरीरके आकारका चिन्ह था, उसी आकार समान चित्र अथवा पाषाणादिमें ज्योका त्यो आकार वा चित्र बनाना, और उस आकारमें कोई तरहकी कसर न हो। वैसेही वर्त्तमान कालमें मन्दिरोंमें जो मूर्त्ति स्थापनकी जाती है, सो उन मूर्त्तियोंके देखनेसे साक्षात् भगवानकी प्रतीति का होना, इसीका नाम सद्भूत स्थापना है। इसी लिये शास्त्रोंमे जिन प्रतिमा जिन सारसी कही, सो इसकी पूजनकी विधि तो 'स्याद्वाद अनुभव रत्नाकर'के चतुर्थ प्रश्नके उत्तरमे एकान्तनिज्जरा सिद्ध कर चुके हैं, और पुनः उसी ग्रंथके तीसरे प्रश्नके उत्तरमे ढूढियोंके खण्डनमें सिद्ध कर चुके हैं। मूर्तिका मानना उसी ग्रंथके दूसरे प्रश्नके उत्तरमें दयानन्दके मतखण्डनमें कर चुके हैं। इसी लिये इस जगह कुछ चर्चा नही लिखी, इस जगह तो केवल जिज्ञासुके वास्ते हेय, ज्ञेय और उपोदय, उत्सर्ग, अपवाद ही दिखाना है,सो उसीको दिखाते हैं। इस स्थापनामे पांचों बोल उतारे हैं, कि ऊपर लिखे स्वरूपको जानना सो तो ज्ञेय है, और मूर्तिको तदरूप परमेश्वर जानना सो उपादेय है, और चित्र वा पाषाणादि बुद्धिको छोडना सो हेय है। उत्सर्गसे तो भगवतरूप

जानकर उनकी पूजनादि कृत आशातना टालकर बहुमान सहित करना, और अपवादसे पूजनादि न हो सके तो भगवत आज्ञा सहित स्तुति आदिक करना। अब दूसरी रीतिसे भी इसी स्वरूपको दिखाते हैं; कि ऊपर लिखी सब बातोंको और शान्तिःरूप प्रभु मेरी शान्तिः रूप कार्य्यका निमित्त कारण है। और उपादान मैं खुद हूं। इत्यादिकों को जानना सो तो ज्ञेय है। और प्रभुकी शान्तिः रूप छबिको देखकर अपने शांति रूप करना, सो उपादेय है- बाकी हेय है। और उत्सर्ग से तो प्रभुको शान्तिः रूप देखकर आप भी तद्रूप शान्तिः होजाना और अपवादसे प्रभुको शान्ति रूप देखना अथवा शान्तः गुणोंका स्मरण करना है, इस रीतिसे स्थापना में ५ बोल कहे ॥

अब द्रव्य निक्षेपासे देवका स्वरूप कहते हैं, कि द्रव्य देवके दो भेद हैं। एक तो आगम करके दूसरा नो आगम करके १ आगम से तो देवका स्वरूप जाने परन्तु उपयोग न हो। यदि उक्तं " अनुभव योगोद्व्वं " इति वचनात् ऐसा अनुयोगद्वार सूत्रमें कहा है, कि द्रव्य से देवका स्वरूप, तो सब जाने परन्तु उपयोग न हो, उसको आगम करके द्रव्य निक्षेपा कहते हैं। इस निक्षेपाके तीन भेद हैं। पहला ज्ञय शरीर दूसरा भव्य शरीर तीसरा तद व्यतिरिक्त शरीर। सो प्रथम ज्ञय शरीरका स्वरूप दिखाते हैं, कि जैसे श्री महावीर स्वामी तीर्थंकरका निर्वाण अर्थात् मोक्ष भया, उस शरीरका जब तक अग्नि संस्कार न हुआ और वो शरीर जितनी देर तक बना रहा, उस शरीरको ज्ञय शरीर द्रव्य निक्षेपा कहते हैं। अथवा कोई ज्ञय शरीरको इस रीतिसे भी उतारते हैं, कि—जो कोई भव्य जीव देवका स्वरूप भाव सहित अर्थात् उपयोग सहित जानता होय, और उस भव्य जीवका

जीव तो परलोक चला गया। इसके शरीरको भी ऐसा कहेंगें, कि देवका यथावत् भाव से स्वरूप जानने वालेका यह शरीर है- इसलिये इसको भी द्रव्य निक्षेपा कहते हैं। और जब तीर्थंकर महाराज माताके पेटमें से जन्म लेकर बालअवस्था में रहते हैं, उस शरीरको भव्यज्ञय शरीर द्रव्य निक्षेपा कहते हैं। अथवा किसी भव्य जीवको बाल अवस्था में किसी आचाय ने ज्ञान से देखा, कि—यह बालक कुछ दिनके बाद भाव अर्थात् उपयोग सहित देवका स्वरूप जनाने वाला होगा, इसलिये इस बालकको भी भव्य शरीर द्रव्य निक्षेपा कहेंगे। अब तीसरा तद् व्यतिरिक्त द्रव्य निक्षेपा का स्वरूप दिखाते हैं, इसके अनेक भेद हैं, सो बहुत भेद लिखे तो ग्रंथ बढ जानेका भय है परन्तु जिज्ञासुके समझानेके वास्ते एकभेद अपना देवपना प्रगट करना, और अपवादसे प्रत्यक्ष देवको देखकर अपना देवपना प्रगट करना, तथा अपवादसे प्रत्यक्ष देवकी भक्ति करना, इस रीतिसे पांचो बोल कहे ॥

अब इस जगह कोई ऐसी शंका करे, कि चारों प्रमाणोके शांमिल उतारनेमें जिज्ञासुको यथावत् बोध न होगा, इस लिये जिज्ञासुके ऊपर करुणा अर्थात् उपकार बुद्धिसे भिन्न २ उतार कर दिखाते हैं। परन्तु निश्चय अर्थात् शुद्ध व्यवहारकी रुचि वाले जिज्ञासुको यथावत बोधका कारण है, परन्तु गुरू यथावत बताने वाला हो. तो शुभ व्यवहार न उठे। जो गुरू यथावत बताने वाला न होय तो निश्चय और व्यवहार दोनोंसे अलग करदे। इस लिये शुद्ध गुरू गीतार्थकी चरण सेवासे इन चीजोंका यथावत् ज्ञान होगा, नतु हरेक गुरूसे ॥

अब प्रत्यक्ष प्रमाणसे देवमे पांच बोलउतारकर दिखाते हैं, कि प्रयक्ष देवके यथावत् स्वरूप समोसरण अतिशय आदिकको जा-

नना सो ज्ञेय है ।परन्तु उस देवको अपना देवपना प्रगट करनेका निमित्त जानकर उस निमित्तका बहुमान करना सो उपादेय है, और बाकी सब हेय जानना । उत्सर्गसे तो प्रत्यक्ष देवके गुणोंको निमित्त लेकर अपना देवपना प्रगट करना है, और अपवादसे प्रत्यक्ष देवके गुणोंका स्मरण करना अथवा बहुमान सहित भक्तिमें चित्तको लगाना । अब अनुमानमें ५ बोल उतारते हैं, ऊपर लिखे अनुमान प्रमाणको यथावत् हेतु सहित साध्यको जानना सो तो ज्ञेय है, और हेतुसे जो साध्य सिद्ध हुआ जो देव उस देवके अमृतरूपी वचनको ग्रहण करना सो उपोदय है और उत्सर्गसे तो जो देवका वाक्य ग्रहण किया था, उस वाक्यके अर्थको जानकर आज्ञा सहित क्रियादिक व्योपार करना, और अपवादसे व्योपार विना जो आज्ञाको मानना सोही अपवाद है । अब उपमान प्रमाण पर उतारते हैं, कि ऊपर लिखे उपमान प्रमाणका जो स्वरूप उसको ज्योंका त्यों जानना, सो तो ज्ञेय है, और उपमा दी जाती है, जिसकी उस उपमा वालेके गुणोंको ग्रहण करना सो उपादेय है ।उत्सर्गसे तो जो गुण जिस कार्य्यके वास्ते ग्रहण किया है, उस कार्य्यको करना सोही उत्सर्ग है, और कार्य्य न कर सके केवल गुणही ग्रहण करे तो अपवाद है । इसी रीतिसे यह पांच बोल हुवे और आगममे उतारना सहल है। इस लिये यहां उतार कर नही दिखाये यह ऊपरके लिखे बोलोंको समझलेगा, वो आपही आगममे उतार लेगा, अब द्रव्य से क्षेत्रसे, कालसे 'और भाव से देवका स्वरूप कहतेहै, प्रथम द्रव्यसे स्वरूप लिखतेहैं, द्रव्यसे देवके दो भेद हैं । पहला लौकिक देव दूसरा लोकोत्तर देव १ लौकिक देवतो उसको कहतेहैं कि–जो लौकिकमें देव कहलातेहैं. जैसे भवनपति व्यन्तर, ज्योतिषी, और वैमानिक यह चार निकायके वसने वाले

इनको लोकमें देव कहतेहैं । कोषादिकमें लिखाहै,कि"अमरा निर्जरादेवा" ऐसा अमरकोषका वाक्य है । इसलिये इनको द्रव्यसे लौकिक देव कहतेहैं लोकोत्तर देव उसको कहतेहै । कि–जिसवक्तमें तीर्थंकर दीक्षा लेकर ज्ञान सहित विचरतेहैं ।–अथवा केवल ज्ञानी केवल ज्ञान करके सहित देशना नदे उसवक्तमें द्रव्यसे देव होतेहैं । इसरीतिसे द्रव्यसे देवका स्वरूप कहा । अब इसपर पांच बोल उतारकर दिखातेहै कि–जो स्वरूप हम ऊपर लिख आयेहैं, उसको यथावत् लौकिक और लोकोत्तर द्रव्यसे देवका स्वरूप जानना सो तो ज्ञेयहै, और लोकोत्तर द्रव्यसे देवका ग्रहण करना सो उपादेयहै, बाकी सब हेयहै । उत्सर्गसे तो लोकोत्तर द्रव्यसे देवकी भक्ति वहुमान करना सोही उत्सर्गहै, और अपवादसे लाभ कारण धर्म कृत विशेष उद्यम होनेके वास्ते सम्यक्त द्रष्टि लौकिक देवका बहुमान करे तो अपवादही जानना । अब क्षेत्रसे देवका स्वरूप कहतेहैं. सो क्षेत्रथी देवकेभी दो भेदहैं १ पहला लौकिक २ लोकोत्तर, सो लौकिक क्षेत्रमें तो भवन पति जो जमीनके भीतर रहतेहैं, व्यन्तर जमीनके ऊपर रहतेहैं, और ज्योतिषी वैमानिक ऊपर लोक अर्थात् आकाशमें रहतेहैं । इनको पाताल पृथ्वी अथवा ऊर्ध्व लोकमे रहनेसे क्षेत्रसे लौकिक देव कहा । लोकोत्तर क्षेत्रथी देव कौन है, कि जिस क्षेत्रमें तीर्थंकर विचरे उन तीर्थंकरोंको क्षेत्रसे लोकोत्तर देव कहते हैं । जैसे १५कर्म भूमि क्षेत्रहैं, जिसमें ५ तो भरत और ५ ऐरवत, और ५ महाविदेह इन १५ क्षेत्रोंमें विचरने वाले जोहैं, उनमें भी जैसे भरत क्षेत्रमें२५ आर्य देश कहे, तथा जिन क्षेत्रोमें तीर्थंकरोंका गर्भथे, उत्पत्ति, जन्म, दीक्षा,केवल ज्ञान अथवा निर्वाणहो,और केवल ज्ञान सहित विचरे, उनको लोकोत्तर क्षेत्रसे देव कहिये, अब इनमेंभी ५ बोल

कि—जब तीर्थ कर महाराज ग्रहस्थपनेको छोडकर दीक्षा लेकर विचरते हैं, और केवल ज्ञान नहीं हो, तब तक उनको तदव्यति रिक्त द्रव्य निक्षेपामे कहेंगे, अथवा केवल ज्ञान उत्पन्न हुएके पीछे भी देशना "विना देव छन्ना" अर्थात् समोसरणके बिना बैठे हुए अथवा देवताओंके साथ सुवर्ण कमलके ऊपर मार्गमें चलते हुएको तदव्यतिरिक्त निक्षेपामें कहेंगे। अब इस पर भी ५ बोलोंको उतारते हैं, कि—ऊपर लिखे स्वरूपको यथावत् जानना सो तो ज्ञेय हैं, और ज्ञेय शरीर अथवा भव्य शरीरको हेय जानना, और तदव्यतिरिक्त अर्थात् विचरने वाले तीर्थंकरको अथवा देशना बिना प्रभुको अंगीकार करना, सो उपादेय है। उत्सर्गसे तो भगवतको आहार आदिसे भक्ति अथवा उपयोग विना वाणीका सुनना, और अपवादसे प्रभुके दर्शनकी इच्छा करना, परन्तु कर न सके। इस रीतिसे ५ बोल कहे। यहां ऐसी शंका होती है, कि आपने द्रव्य देवके आगम और नो आगम करके दो भेद कहे, जिसमें नो आगमके ३ भेदमे ५ बोल उतारे, तो इस शंकाका समाधान ऐसे हैं, कि—हे देवानुप्रिय ! यह पांच बोल तो जितने हमने भेद कहेहैं, उन दो में से जुदे २ एक २ भेद पर न्यारे उतर सक्ते हैं, परन्तु जुदे २ भेद पर उतारनेमे सूक्ष्म रीति है, सो उसको समझना जिज्ञासुको कठिन होता है। इस लिये हमने जुदे २पर नहीं उतारे। क्यों कि इस द्रव्यानुजोगके रमण करने वाले गुरू कोई बिरले हैं, और रमण करने वाले गुरूके विना वाचक ज्ञानी अर्थात् पुस्तक बांचकर लोगोंको रिझाने वाले, अथवा गीतार्थ नाम धराने वाले गुरू कुलवास बिना और द्रव्यानुजोगसे रमणताके विना नही समझा सक्ते हैं। किन्तु वे लोग निश्चय बतायकर उलटा भ्रम जालमें गेरकर जो जिज्ञासु थोडे बहुत इस विचारके करने वालेहैं, उस जिज्ञासुको इस

विचारसे डिगाय देते हैं। इस हेतुसे हमने जुदा २ बोल उतरा कर न दिखाया, परन्तु इस रीतिमें आगमको भी शामिल करके इन पांच बोलको द्रव्य निक्षेपमें दिखाते हैं, कि आगम और नो आगम दोनों द्रव्य निक्षेपका स्वरूप जानना, सो ज्ञेय है और आगममें कही व्यवस्था देव द्रव्यकी अथवा नो आगम तद्व्यति रिक्त द्रव्य देवको निमित्त समझकर अपनेको द्रव्य उपादान समझ कर द्रव्य उद्यम करनेकी इच्छा कि मैं करूं सो उपादेय है। बाकी सब हेय जानना; अब उत्सर्ग से तो निमित्त द्रव्य देव को और अपना उपादान द्रव्य देवको अपना उपकारी जानकर उनका ही द्रव्य स्मरण उपयोग बिना उद्यम करना सो अपवाद है। इस रीति से ५ बोल कहे, अब भाव निक्षेपा से देवका स्वरूप कहते हैं, कि जिस वक्त मे तीर्थंकर महाराज विराजमान चतुर्विध संघ अर्थात् साधू, साध्वी, श्राविक, श्राविका अथवा १२परखदा के सामने भव्य जीवोंको उपदेश देते हुए उस वक्त देवका भाव निक्षेपा कहते हैं, अथवा कोई भव्य जीव भाव देवका यथावत् स्वरूप जानकर निमित्त कारण अंगीकार करके अपने को उपादान जान कर अपने गुण प्रगट करने के वास्ते भावदेवको मानता हुआ अथवा अन्तरंग की सत्तामें अपनेको ही भाव देव मानता हुआ, अभेद पनेको अंगीकार करे, इसलिये अपेक्षा से इसको भी भाव निक्षेपा से देव कहते हैं, ऊपर लिखे स्वरूप को यथावत् उपयोग सहित जानना सो तो ज्ञेय है, और उस भाव देवकी वाणी को श्रोत्रइंद्रि द्वारा सुनकर उसके रहस्य को ग्रहण करना सो उपादेय है, और बाकी सर्व हेय है, और जब उस रहस्य को ग्रहण किया तब उपयोगसहित उत्तम से भाव प्रगट करना सो उत्सर्ग है;

और जो व्यवस्था उत्सर्ग में कही है, उसको द्रव्य से करना सो अपवाद है, इस रीति से ५ बोल भाव देव पर कहे, अब ४ प्रमाण से देवका स्वरूप कहते हैं, प्रत्यक्ष प्रमाण से देवका स्वरूप इस रीति से है, कि जिस काल में इस भर्त्त क्षेत्र में केवल ज्ञान से संयुक्त तीर्थंकर महाराज विचारतेथे, उस वक्त जो लोग देखते थे उन देखने वालोंको प्रत्यक्ष देव था, अथवा वर्तमान काल मे श्रीमहाविदेह क्षेत्रमें केवल ज्ञान संयुक्त तीर्थंकर महाराज उपदेश देते हुए विचारते हैं. सो वे तीर्थंकर महाराज उस महाविदेह क्षेत्र वाले मनुष्योंके प्रत्यक्ष देव है, अथवा उन प्रत्यक्ष देवोको देखकर जो उनके आकार जैसे थे वैसेही चित्र यथावत अथवा मूर्ति बनाई हैं, उससे भी वो प्रत्यक्ष देव है, इसी लिये शास्त्रोमें कहा है कि जिन प्रतिमा जिनके समान है, अब अनुमान प्रमाणसे देवका स्वरूप कहते हैं सो प्रथम अनुमानकी रीति दिखाते हैं कि अनुमान किस रीतिसे सिद्ध होता है, कि लिंग देखने से लिंगीका ज्ञान होता है, जैसे धूमको देखकर अग्निका अनुमान होता है, कि धुओं इस जगह है तो अग्नि अवश्य होगी । इस रीति से वचन के सुनने से पुरुषका अनुमान होता है, कि–यह पुरुष प्रमाणिक है, इसलिये इस जगह भी अनुमान सिद्ध करते हैं, कि पक्षपात रहित अमृत रूपी स्याद्वाद अनेकान्त करके संसारका रूप और मोक्षका मार्ग बताया है । इन वचनो करके मालुम होता है, कि—कोई सर्वज्ञ देव है, अथवा उसका चित्र वा मूर्ति देखने से अनुमान करते हैं, कि– जैसे यह मूर्ति शान्त ध्यानारूढ पद्म आसन लगाई हुई हैं, और अविकारी है, इसके भी देखने से बुद्धिमान भव्यजीव अनुमान

करते हैं, कि जिसकी यह मूर्ति है, उसका भी शरीर शान्तिःरूप ध्याना रूढ पद्मासन लगाये अविकारी होगा । इस लिये अनुमान से देव सिद्ध होगया ॥

अव उपमान से देवका स्वरूप कहते हैं, कि—जैसे लोग व्यवहार में कहते हैं, कि यह पुरुष कैसा वितरागकी उपमा देने से सिद्ध होता, है कि—कोई वीतराग होगा, तब लोग उस वीत रागकी उपमा देतहैं, अथवा जैसे श्रेणकका जीव आवती चौवीसीमें तीर्थकर होगा तो उनको वीतरागकी उपमा देते हैं, जैसे उत्सर्पिनी काल मे श्री महावीरस्वामी हुए, उसी माफिक श्री पद्मनाभ स्वामी होंगे । सो वर्त्तमान कालकी चौवीसीके तीर्थकर की भविष्य कालमे होने वाले प्रथम तीर्थंकर हैं. उनको श्रीमहावीर स्वामीकी तरह उपमा देकर वर्णन किया है कि—जैसे श्रीमहावीर स्वामी चरम तीर्थंकर हुए, वैसे ही भावी चौवीसी में प्रथम तीर्थंकर होंगे । अव आगम प्रमाणसे देवका स्वरूप कहते हैं, कि—आगभो में देवका स्वरूप लिखा है, कि—३४ अतिशय ३५ वाणी इत्यादिक अनेक प्रकार करके जो आगमो में बहुत बर्णन कियाहै, सो यहां लिखनेकी कुछ जरूरत नहीं । क्योंकि आगमो अर्थात् शास्त्रोंमे प्रसिद्ध है, इसरीतिसे आगम प्रमाणसे देवका स्वरूप कहा ॥

इस जगह चारों प्रमाणोंमें एक संगही ५ बोल बतारकर दिखातेहैं, कि—ऊपर लिखे प्रत्यक्ष आदि चारों प्रमाणोंका स्वरूप जानना सो तो ज्ञेयहै, और प्रत्यक्ष प्रमाण अथवा आगम प्रमाणको ग्रहण करना सो 'उपादेय' और बाकी सब हेय जानना । उत्सर्गसे तो प्रत्यक्ष देवको देखकर

अपना देवपना प्रगट करना, और अपबादसे प्रत्यक्ष देवको देख कर अपना देवपना प्रगट करना, और अपवाद से प्रत्यक्ष देवकी भक्ति करना, इस रीतिसे पांचो बोल कहे ॥

अब इस जगह कोई ऐसी शंका करे, कि चारों प्रमाणोंके शामिल उतारने मे जिज्ञासुको यथावत बोध न होगा, इसलिये जिज्ञासुके ऊपर करुणा अर्थातू उपकार बुध्दि से भिन्न २ उतार कर दिखाते है। परन्तु निश्चय अर्थात् शुध्द व्यवहारकी रुचि वाले जिज्ञासुको यथावत् बोधका कारण है, परन्तु गुरू यथावत बताने वाला हो, तो शुभ व्यवहार न उठे. जो गुरू यथावत बतानेवाला न होय, तो निश्चय और व्यवहार दोनोंसे अलग करदे, इसलिये शुध्द गुरू गीतार्थकी चरण सेवासे इन चीजोंका यथावत् ज्ञान होगा, न कि हरेक गुरूसे ॥

अब प्रत्यूक्ष प्रमाणसे देवपर पाच बोल उतार कर दिखाते हैं। कि प्रत्यक्ष देवके यथावत स्वरूप समो सरण अतिशय आदिक का जानना सो ज्ञेय है, परन्तु उस देवका अपना देवपना प्रगट करनेका निमित्त जानकर उस निमित्तक वहुमान करना सो उपादेय है, और वाकी सव हेय जानना, उत्सर्ग से तो प्रत्यक्ष देवके गुणोंका निमित्त लेकर अपना देवपना प्रगट करना है, और अपवादसे प्रत्यक्ष देवके गुणोंको स्मर्ण करना अथवा वहुमान सहित भक्तिमे चित्तको लगाना ? अब अनुमान में ५ वोल उतारते हैं, ऊपर लिखे अनुमान प्रमाणको यथावत हेतु सहित साध्यको जानना सो तो ज्ञेय है, और हेतुसे जो साध्य

सिध्द हुआ, जो देव, उस देवके अमृत रूपी वचनको ग्रहण करना सो उपादेय है, और उत्सर्गसे तो जो देवका वाक्य ग्रहण किया था, उस वाक्यके अर्थको जानकर आज्ञा सहित क्रियादिक व्यौपार करना और अपवादसे व्यौपार विना जो आज्ञाको मानना सोही अपवाद है। अव उपमान प्रमाण पर उतारते हैं, कि ऊपर लिखे उपमान प्रमाणका जो स्वरूप उसको ज्योंका त्यों जानना, सो तो ज्ञेय है, और उपमा दीजाती है, जिसकी उस उपमावालेके गुणोंको ग्रहण करना सो उपादेय है, उत्सर्ग से तो जो गुण जिस कार्य्यके वास्ते ग्रहण किया है, उस कार्यको करना सोही उत्सर्ग है, और कार्य्य न कर सके केवल गुणही ग्रहण करे तो अपवाद है, इसी रीतिसे यह पाच बोल हुए, और आगम में उतारना सहल है, इसलिये यहां उतार कर नहीं दिखावे, यह ऊपरके लिखे वोलोंको समझ लेगा, वो आपही आगमसे उतार लेगा, अव 'द्रव्य से' क्षेत्र से 'काल से' और 'भाव से' देवका स्वरूप कहते हैं, प्रथम द्रव्य थी स्वरूप लिखाते हैं, द्रव्य थी देवके दो भेद हैं, पहला लौकिक देव दूसरा लोकोत्तर देव ? सो लौकिक देव तो उसको कहते हैं, कि-जो लौकिकमें देव कहलाते हैं, जैसे भवन पति व्यवन्तर ज्योतिषी, और वैमाणिक यह चार निकायके बसने वाले इन को लोकमें देव कहते हैं, कोषादिकमें लिखा है, कि "अमरा निर्जरा देवा" ऐसा अमरकोषका वाक्य है, इस लिये इनको

द्रव्य से लौलिक देव कहा ! लोकोत्तर देव उसको कहते हैं, कि-जिस वक्तमें तीर्थ कर दिक्षा लेकर ४ ज्ञान सहित विचारते हैं, अथवा केवल ज्ञानी केवल ज्ञान करके सहित देशता ने दे उस वक्तमें द्रव्यसे देव होते हैं, इस रीतिसे द्रव्यसे देवका स्वरूप कहा, अब इस पर पांच बोल उतार कर दिखाते है, कि जो स्वरूप हम ऊपर लिख आये हैं, उसको यथावत लौकिक और लोकोत्तर द्रव्यथी देवका स्वरूप जानना सो तो ज्ञेय है, और लोकोत्तर द्रव्यसे देवका ग्रहण करना सो उपादेय है, बाकी सब हेय है उत्सर्गसे तो लोकोत्तर द्रव्यथी देवकी भक्ति बहुमान करना सोही उत्सर्ग है, और अपवादसे लाभ कारण धर्म कृत विशेष उद्यम होनेके वास्ते सम्यक्त द्रष्टि लौकिक देवका बहुमान करे तो अपवाद ही जानना, अब क्षेत्रसे देवका स्वरूप कहते हैं, सो क्षेत्रसे देवके भी दो भेद हैं १ पहला लौकिक २ लोकोत्तर, सो लौकिक क्षेत्रसे तो भवन पति जो जमीनके भीतर रहते हैं, व्यन्तर जमीनके ऊपर रहते हैं, और ज्योतिषी वैमानीक ऊपर लोक अर्थात आकाशमे रहते हैं, इनको तो पातालपृष्टसे अथवा ऊर्द्ध लोकमे रहनेसे क्षेत्रसे लौकिक देव कहा ॥

लोकोत्तर क्षेत्रसे देव कौन है, कि जिस क्षेत्रमे तीर्थकर विचरे उन तीर्थकरोको क्षेत्रसे लोकोत्तर देव कहते हैं, जैसे १५ कर्म भूमि क्षेत्र हैं, जिसमें ५ तो भर्त्त और ५ आरवर्त, और ५ महा विदेह इन १५ क्षेत्रोमे विचरने वाले जो हैं, उनमें भी जैसे भर्त्तक्षेत्रमें २५ ॥ आर्य देश कहे, तथा जिन क्षेत्रोंमे तीर्थकरोंका गर्भ उत्पत्ती जन्म दिक्षा केवल ज्ञान अथवा निर्वाण हो, और केवल ज्ञान सहित विचरे, उनको लोकोत्तर क्षेत्रसे कहिये, अब इनमे भी ५ बोल उतारते हैं , इस

जगहभी ऊपर लिखे हुए स्वरूपको यथावत दोनों देवोंके स्वरूपको जानना सो ज्ञेयहै। और जो लोकोत्तर क्षेत्रोंमें देव विचरनेवाले मोक्ष दाता शुध्द मार्गबतानेवाले वो भव्यजीवोंको उपादेयहै। वाकी सब हेयहै। अब उत्सर्गसे तो जो क्षेत्रमे विचरनेवाले तीर्थकरहैं। उनकी देशना आदि श्रवण करना, और देशना को अपना कल्याणक जानकर उस उपदेशको जानकर उद्यम करना, यही उत्सर्गहै। अपवादसे कारण विशेष जो लौकिकदेव क्षेत्रसै ऊपर लिख आयेहैं। उनमेंसे किसी क्षेत्रवालेको धर्म कृतमें सहायत लेनेके वास्ते आराधन करना सो अपवाद है॥

अब कालसे देवका स्वरूप कहतेहैं। कि–जिसकालमे तीर्थकरोंका जन्म अथवा दिक्षा अथवा केवल ज्ञान कि जैसे श्रीऋषभ देव स्वामी तीसरे आरेमें उत्पन्न हुए। जबसे लेकर चौवीसवें श्रीमहावीर स्वामी चौथे आरेके अन्तमे मोक्ष गये। तो इसरीतिसे दस क्षेत्रकी अपेक्षासे काल इसरीतिसे लिया जायगा, और पांच महा विदेह क्षेत्रकी अपेक्षा करके तो कालशास्वता है। क्योंकि उनक्षेत्रोंमे कोई समय ऐसा नहीं, कि–जिस समयमें तीर्थकर केवलीन पावे, इस अपेक्षा कर देव कालसे देव हैं। इसरीतिसे कालभी देवका स्वरूप कहा अब इस पर पांच बोल उतारकर दिखाते हैं। कि–ऊपर लिखे स्वरूपको जानना सो तो ज्ञेय है। और जिस कालमें जो होय, उस देवको उसी कालकी अपेक्षासे मानना, सो उपादेय है। और बाकी सब हेय है। और उत्सर्गसे तो जब समवसरनमें बैठकर देशना देते हैं। उस कालमे कालभी देव है। और अपवादसे देवकी प्रतिमाको सदैव देव बुधि मानना, इसरीतिसे ५ बोल

कालसे देवके ऊपर कहे । अब भावसे देवका स्वरूप कहते हैं । कि—जिस समयमें समोसरनमें बैठेहुए भव्य जीवोंको अपने अमृतरूपीवचनसे मोक्ष मार्ग प्राप्ति होनेका प्रति बोध कराते हैं; और आत्माका स्वरूप बताय कर भव्य जीवोंको मोक्ष में पहुंचाते हैं । उस वक्त मे भावसे देव है । अब इस भाव से देवके ऊपर पांच बोल उतार कर दिखाते हैं । कि—ऊपर लिखे स्वरूपको जानना सो तो ज्ञेय हैं । और अपने भावसे तरण तारण निमित्त कारण मानना सो उपादेय है । बाकी सर्व हेय है । और उत्सर्गसे भाव देवके निमित्त से अपने में भाव देवपना प्रगट करना, सो भाव थी देव है । और अपवाद जो उपादेयकी रीति कही है । उस रीतिसे मानना, सो आपवाद करके भावथी देव है । इस रीतिसे पाच बोल कहे ॥

अब इस जगह तक तो हरेक जिज्ञासु समझे, और कोई तरहका विकल्प न उठे, परन्तु अब जो आगेके बोलोंके ऊपर यहही पांचबोल उतारेहैं। उनके समझानेवाला आत्मार्थी शुद्ध गुरू स्याद्वाके रहस्यको जानने वाला और अध्यात्म रस जिन्होंने पान किया है । वही गुरू यथावत जिज्ञासुको समझाय कर उसको आत्मबोध करावेंगे, और जिज्ञासुको शुभ व्यवहारकी रीतिमे यथावत प्रवृत्त कराय कर शुध्द व्यवहारको दिखाय देंगे, नहीं तो वर्त्तमानकालमें दु:ख मोह गर्भित वैराग्यवाले जिन आगमके अज्ञान आत्म अर्थसे विकल और अध्यात्मी नामसे इन्द्रियोंका विपय भोग करते हुए जिज्ञासुको शुभ क्रियासे हटाय कर निश्चयको समझाय देते हैं। और इन्द्रियोंको विपय भोगमें लगाय देते हैं । क्यों कि इन्द्रियोंके भोगसे तो संसारी जीव अनादि कालका सेंधा (परिचय) हैं ।

इस लिये वह जिज्ञासु अध्यात्मके ग्रंथ उन विकल अध्यात्मियोंसे पढ़कर शुभ क्रिया अर्थात् समायिक पच्चाखानादको छोडकर वाचक ज्ञानी बनकर। हर एकसे बाद विवाद करते हुवे अपनी आत्माको ज्ञानी मानकर शुभ व्यवहारको उठाते हैं । इसलिये हमारा भव्य जीवोंसे यह कहना है । कि-इन दोनो बिकलोंको छोडकर शुद्ध गुरूसे पठन करके अपनी आत्मामें बुध्दि पूर्वक मनन अर्थात् विचार करे जिससे उनका कल्याण हो, अथवा शुध्ध गुरू कहने वालेका संयोग न मिले, तो इस पुस्तकमे लिखी हुई वाते बारम्वार एकान्तमें वैठकर विचारेगा, और शुभ व्यवहारमें प्रवृत्ति करेगा, तो उसको इसका रहस्य प्राप्त हो जायगा, और अपनी आत्माका कल्याण कर लेगा, इस लिखनेका तात्पर्य यह कि यहांसे निश्चय सगेत शुद्ध व्यवहारसे अगाडीके वोल उतारते हैं । सो इस रहस्यको समझने वाले आत्मार्थी थोडे हैं और शुभव्यवहारसे हाथ उठाने वाले वहुत हैं । इस लिये हमारा जो अभिप्राय था, सो कालकी अपेक्षा देख कर लिख दिया क्यों कि इस वर्त्तमान कालमें शुभ व्यवहारके उठाने वाले अथवा अशुद्ध व्यवहारके थापने वाले इन दोनोंका कदाग्रह देख कर लिखा है, सो आत्मार्थी भव्यजीव बुद्धि पूर्वक जानकर इस ग्रंथको अपना कल्याण हेतुसे वारम्वार विचार करेगा तो उसको यथावत जिन धर्मके रहस्यकी प्राप्ति होगी ॥

अव अनादि अनन्त और अनादि सान्त और सादी सान्त और सादी अनन्त इन चार भागोंसे देवका स्वरूप दिखाते हैं । जिसमें प्रथम अनादि अनन्त भागोंसे देवका स्वरूप कहते हैं कि अनादि अनन्त शब्दका अर्थ यह है । कि—जिसका आदि और अन्त दोनो नहीं, तो देखो, कि—'अरिहन्त' इस शब्दको अनादि

अन्त कहते हैं। क्यों कि–यह शब्द कब उत्पन्न हुआ, सो नहीं कह सके, और यह शब्द कभी नष्ट हो जायगा, यह भी न कहसक्के, इस लिये नामसे अनादि अनन्त देव हुआ ॥

स्थापनासे जोकि साश्वती जिन प्रतिमा है। वो अनादि अनन्त है। क्योंकि नतो वो किसीकी बनाई हुई है। और न कभी उन जिन बिम्भोका अभाव होगा, इसलिये यह स्थापना करके अनादि अनन्त है। महा विदेह क्षेत्रकी अपेक्षा करके ऐसा कभी न होगा, कि-उस जगह छद्मस्थ तीर्थंकर न पावेंगे, इस रीतिसे अनादि अनन्त देवका स्वरूप कहा ॥

अब अनादि सान्त भागोंसे देवका स्वरूप कहते हैं। जो कोई भव्यजीव व्यवहार नयसे देवको मानता हुआ ऋजु सूत्र नयसे अपने मेही देवपना उपयोग देकरके मानने लगा, अथवा आठवें गुण ठाणेमें जीव क्षेपक श्रेणी करके बारवे गुण ठाणेमें अपना देवपना प्रगट किया, तो जो अन्यको अनादिसे देव बुद्धि मान या वो बुद्धि अन्यको देव माननेकी अनादि कीथी, सो उस जगह शान्त: होगई, यह अनादि शान्त भागोसे देवका स्वरूप कहा (२१) अब सादी शान्त भागोंसे देवका स्वरूप कहते हैं। कि–जो भव्य जीव व्यवहार नयसे आवर भाव जो तीर्थकरोंका देवपना है। उसको निमित्त कारण मानकर स्तुति करता है, और ऋजु मूत्र नयकी अपेक्षासे त्रोधा न रूप अपनी आत्ममें उप योग देता हुआ अपने ही को देव मानता हुआ फिर ऋजुसूत्र नयका उपयोग दूर हुआ तब व्यवहार नयसे अरिहन्तको देव मानने लगा तो अपनी आत्माको देव माना था उसकी आदि है। फिर जब अरिहन्तको देव माना तो अपनी आत्माको देव माना

था तिसका अन्त हुआ, अथवा दूसरी रीतिसे कि जिस वक्त शुद्ध देवको अङ्गीकार करता है। वा शुद्ध देवको देव बुद्धि करके मानता है उस वक्त तो शुद्ध देव माननेकी उत्पत्ति नाम आदि हुई और फेर मिथ्यात्वके प्रवल उदय होनेसे शुद्ध देवको छोड़कर कुदेवको मानने लगा इस रीतिसे सादी सांत भागोंसे देवका स्वरूप कहा (२२) अब सादी अनन्त भांगेसे देवका स्वरूप कहते हैं। कि देखो जो तीर्थकरोंके नाम गोत्र कर्मके उदयसे जब देवपना प्रगट हुआ उस देवपनेके प्रगट होनेकी तो आदि है। फिर देवपना उनका कभी मिटेगा नहीं इस लिये सादि अनन्त हुआ अथवा जिस किसी भव्य जीवने चार घन घाति कर्मोंको क्षय करके अनन्त ज्ञान अनन्त दर्शन,अनन्त चारित्र,अनन्त वीर्य प्रगट किये और जो देवपना प्रगट हुआ उसकी तो आदि है और उस देवपनेका कभी अन्त नहीं होगा इस लिये अनन्त है ये सादी अनन्त भागोंसे देवका स्वरूप कहा अब इन चारो भागों से जो देवका स्वरूप कहा इन चारों भांगोंमें एक साथ पांच बोल उता-स्कर दिखाते हैं। कि प्रथम गेयका स्वरूप दिखाते हैं। कि जिस रीतिसे हमने ऊपर अनादि अनंत अनादि सान्त सादि अनंत सादी सान्त इन चारोंको अच्छी तरह जानना उसका नाम गेय है।अब इन चार भागोमें से सादी सान्त भागोंको ह्येय अर्थात् छोड़कर और तीन भागोको उपादेय अर्थात् अंगीकार करें अब इन चारो भांगो में उत्सर्ग इस रीतिसे होता है कि अनादि अनन्त और सादि अनन्त इन दो भांगोंके ही स्वरूपको स्मर्ण और विचार में रक्खे ऐसा न होसके तो अपवाद मार्गसे अनादि अनन्त भागोका स्मर्ण अर्थात् विचार करे इस रीतिसे इन चारों भांगो में ५ बोल

कहे अब जुदी २ रीतिसे इन्हीं पांचो बोलोंको एक २ भाग में दिखाते है। कि प्रथम जो अनादि अनन्त भागोंका स्वरूप ऊपर लिखा है। उसको जाने और इसके साथ मे इतना विशेष और जानें कि निश्चय अंर्थात् निसन्देह शुद्ध व्यवहार करके मेरी आत्मा अनादि अनन्त देव स्वरूप है परन्तु पुदगलीक संयोगसे त्रोभाव होरहा है परन्तु निज सत्ता विचारनेमें आवर भाव प्रगट रूपी है। उसमें कोई तरहका सन्देह नहीं इस रीतिसे जाननेका नाम इस जगह गेय है अब ऊपर लिखा हुआ जो अनादि अनन्त देवका स्वरूप ऊपर कह आये है उसको हेय अर्थात् छोड अपनी आत्माको अनदि अन्त निश्चय शुद्ध व्यवहारसे असंग मानना उसीका नाम उपादेय अर्थात् ग्रहण करना है उत्सर्ग मार्गसे तो जो उपादेय है। उसीको एकत्वपनेसे अभेद होकर लय होना उसीका नाम उत्सर्ग मार्ग हैं। अपवाद मार्गसे अपनेमें लीन न होय और लीन न होनेके कारण समझकर ऊपर लिखे अनादि अनन्त देवके स्वरूपको स्मर्ण करना सो ही अपवाद है। अब अनादि सात भागोंमे ही यह ही ५ बोल उतारते हैं। परन्तु ऊपर जो अनादि सात भागोंका स्वरूप लिखा है। उसकी जिज्ञासुको दूर होनेकी वजहसे खबर न पड़े इस लिये इस जगह पेश्तर अनादि सात भागोका स्वरूप दिखाय कर पीछे पांच बोल उतारेंगे सो अनादि सात भागोका स्वरूप फिर इस जगह कहते हैं। जो कोई भव्यजीव व्यवहार नयसे देवको मानता हुआ ऋजुसूत्र नयसे अपनेमे ही देवपना उपयोग देकर मानने लगा अथवा आठवें गुणठाणवाले जीवने क्षेपक श्रेणी कर के वारवें गुणठाणेमें अपना देवपना प्रगट किया तो अन्यको अनादि देव बुद्धिमान तथा श्रो बुद्धि अन्यको देवमानने की अनादि की थी, सो उस

जगह सांत होगई यह अनादि सात भागोसे देवका स्वरूप कहा अव इस जगह गेय तो इस लिखे हुए स्वरूपको जाननेका नाम है। हेय इस जगह जो अन्यको देव बुद्धि मानता था, उस बुद्धिको छोड़ना सो हेय है बाकी सब उपादेय हैं, उत्सर्गसे तो आठवे गुणठाणेवाले जीबने क्षेपक श्रेणी करके बारवें गुणठाणेमें अपना देवपना प्रगट किया वही उत्सर्ग है। अपवादसे उपयोग देकरके आठवें गुणठाणेमें अपनेको देवपनेसे मानना सो अपवाद है। इस रीतिसे पांच बोल कहे अव सादि सात भागोंका स्वरूप कहते हैं। कि जो भव्य जीव व्यवहार नयसे आवरभाव जो तीर्थंकरोंका देवपना है। उसको निमित्त कारण मानकर स्तुस्ति करता है और ऋजुसूत्र नयकी अपेक्षासे त्रोधानरूप अपनी आत्मामें उपयोग देता हुआ अपनेहीको देव मानता हुआ फिर ऋजुसूत्र नय का उपयोग दूर हुआ तब व्यवहार नयसे अरिहन्तको देव मानने लगा तो अपनी आत्माका देव माना उसकी आदि है। फिर जब अरिहन्तको देवमाना तो अपनी आत्माको देव माना था तिसका अन्त हुआ अथवा दूसरी रीतिसे कि जिस वक्त शुद्ध देव को अगीकार करता है वा शुद्ध देवको देव बुद्धि करके मानता है उस वक्त तो शुद्ध देव मानने की उत्पत्ति नाम आदि हुई और फिर मिथ्यात्व के प्रवल उदय होनेसे शुद्ध देवको छोड कर कुदेवको मानने लगा इस रीतिसे सादीसात भागोंसे देवका स्वरूप कहा ऊपर लिखे हुए कुलको जानना उसका नाम तो गेय है और कुदेव आदिकको छोड़ना हेय है; उत्सर्ग करके तो जो ऋजु सूत्र नयसे अपनेमे देव बुद्धि मानना सो ही उत्सर्ग है और अपवादसे शुद्ध देव को देव बुद्धि मानना सो ही अपवाद है अव सादी अनन्त भागोंसे देवका स्वरूप कहते हैं देखो जो तीर्थ-

क्योंके नाम गोत्र कर्मके उदयसे जब देवपना प्रगट हुआ उस देवपनेके प्रगट होने की तो आदि है फिर देवपना उनका कभी मिटेगा नहीं इसलिये सादि अनन्त हुआ अथवा जिस किसी भव्य जीवने चार घन घाति कर्मोंको क्षय करके अनन्त दर्शन, अनन्त चारित्र, अनन्तवीर्य प्रगट किये और जो प्रगट हुआ देवपना उसकी तो आदि है और फिर उस देवपनेका कभी अन्त नहीं होगा इसलिये अनन्त है। ये सारी अनन्त भांगोसे देवका स्वरूप कहा ऊपर लिखे हुए स्वरूपका जानना उसका नाम तो गेयहै। शुद्ध व्यवहार नयसे तो अपना देवपना प्रगट करना वो उपादेय है। उत्सर्ग मार्गसे तो जो चार घनघाति कर्म्मोंको क्षय करके जो अपना देवपना प्रगट करे वो अति उत्तम उत्सर्ग है। अपवाद मार्गसे जिसमें देवपना प्रगट हुआ है उस देवके स्वरूपको सादि अनन्त भागोंसे देवपना मानना सो अपवाद है इस रीतिसे अनादि अनन्त आदि चौभागोंमें गेय हेय उपादेय उत्सर्ग अपवाद कहा अब नित्य अनित्य आदि आठ पक्षमें पांच बोल उतार कर दिखाते हैं सो प्रथम नित्य पक्षका स्वरूप कहते हैं कि देव जो है सो नित्य है। क्योंकि सिद्धकी अपेक्षा करके देव नित्य है। अब कोई ऐसी शंका करे कि चार घाति कर्म क्षय करे उसको देव माना है। फिर सिद्धमें क्यों घटाते हो तो हम कहते है कि देखो अरिहन्त यह शब्द नित्य है अब यहां कोई ऐसी शंका करे कि जिस वक्त सर्पनी उत्सर्पिनी कालके बीचमें जो धर्मका बिलकुल उच्छेद हो जाताहै फिरनवीन तीर्थंकर नवकारादि बतातेहैं जैसे अबकी श्री ऋषभदेव स्वामी उत्पन्न हुए थे उनके पेश्तर तो नौकार कोई नहीं जानता था श्रीऋषभदेव स्वामीके पीछेणमो अरिहन्ताणं इस पदको

जानने लगे ऐसेही पञ्चमें आरेके अन्तमें जब धर्म विच्छेद होगा तो नौकार भी विच्छेद हो जायगा फिर जब श्रीपद्मनाभ तीर्थंकर उत्पन्न होंगे तब फिरणमो अरिहन्ताणं इस पदको जानेंगे इस लिये यह अनित्य ठहरा तो इस शंकाका समाधान ऐसा है कि णमो अरिहन्तणं यह पद तो नित्य है परन्तु धर्मके जानने वाले के अभावसे इस पदका त्रोधान होगया इसलिये यह पद तो नित्य ठहरा दूसरा समाधान यह है कि महा विदेह क्षेत्रमें इस पदका किसी कालमें त्रोधान नहीं होता है और उस महाविदेह क्षेत्रमें द्रव्य और भाव करके भी अरिहन्तका किसी कालमें अभाव नहीं इस वास्ते देव नित्य ठहरा यह नित्य पक्षसे देवका स्वरूप कहा ऊपर लिखे सबको जानना सो तो गेय है और सर्पनी उत्सर्पनीके अंतकालमें जो अरिहन्त शब्दादिका त्रोधान होता है उसको ह्येय जानना बाकी सब उपादेय है उत्सर्ग मार्गसे तो निःसन्देह अपनी सत्ताको शुद्ध व्यवहारसे अपने मेही देवपना अर्थात् जो अपनी आत्मा है वही नित्य देव है ऐसा विचार करना सो उत्सर्ग है अपवादसे जो अरिहन्तादि शब्दमें देवपनेकी नित्यता ऊपर लिखी है उसीको अंगीकार करना अब अनित्य पक्षसे देवका स्वरूप पांचो बोल अर्थात् गेय ह्येय, उपादेय आदि पांचो बोलको दिखाते हैं। अब अनित्य पक्षका स्वरूप भव्य जीव इसी रीतिसे विचारे कि कुदेवकी अपेक्षासे सुदेवमे अनित्यपना है क्योंकि कुदेवमें कुदेवपना नित्य है उस अपेक्षासे सुदेवमें कुदेवपना है नहीं तो उस कुदेवपनेसे सुदेवमें अनित्यता ठहरी अथवा इस रीतिसे विचारे कि मेरी आत्माके सिवाय अन्य देव सब अनित्य है क्यों कि मैंने अज्ञान दशासे दूसरेको देव मान रक्खा था तो

जो दूसरा मेरेसे अलग (जुदा) देव है सो अनित्य है और उस अन्य देवकी अपेक्षासे मेरेमें अनित्य है क्योंकि दोनोंकी आपसमें अन्योना अपेक्षा है इसलिये एककी अपेक्षासे एकमें अनित्यपना है इस रीतिसे अनित्य पक्ष कहा अब इस जगह ऊपर लिखे सर्व स्वरूपको जानना सो तो गेय है, और कुदेवका स्वरूप अर्थात् नहीं है सुदेवपना जिससें केवल कुदेवपनाही नित्य है। इस निस्यतासे उस कुदेवको अंगीकार किया उसका जो छोडना सो ह्येय है, उत्सर्ग से तो अपनी आत्माके सिवाय सबकी अनियता अर्थात् और देव सब अनित्य है अपवाद मार्ग से तो अपना देवपना प्रगट न होनेसे अपनी आत्मा जो देवस्वरूप है। उसकी अनित्यता है। सोही अपवाद मार्ग है अब गेय ह्येय आदि आदि एक पक्ष में भी पांच वोल उतार कर दिखाते हैं। सो प्रथम एक पक्षका स्वरूप कहते हैं। कि जो चार घाति कर्म क्षय करे और केवल ज्ञान केवल दर्शन उत्पन्न करे वो सर्व जीवोंकी एक रीति है। क्योंकि कोई इस रीतिके अलावे दूसरी रीतिसे केवल ज्ञान उत्पन्न नहीं करसके इसी वास्ते जिन धर्म में "नमो अरिहन्ताणं" इस पदके कहनेसे सर्व तीर्थकर और सामान्य केवली सर्व इस पदके अन्तर गत होनेसे एक पदसे सर्वको नमस्कार होगया यह एक पक्ष से देवका स्वरूप कहा, ऊपर लिखे कुल स्वरूपको जानना उसका नाम तो गेय है, और इस जगह ह्येय अर्थात् छोड़ना कुछ है, नहीं केवल उपादेय अर्थात् चार घाति कर्म क्षय करे वही उपादेय है उत्सर्ग मार्ग से तो अपने चार कर्म क्षय करनेका विचार करे अपवाद मार्ग स नयगम संग्रह सत्ताको देखता हुआ सर्व म एकता है ऐसा विचार

सो अपवाद है अब अनेक पक्षमें भी इसी रीतिसे गेय, ह्येय, आदि उतार कर दिखाते हैं सो पेश्तर अनेक पक्षका स्वरूप कहते हैं। कि जैसे अबकी चौबीसी में चौबीस तीर्थंकर हुए उनको जुदे २ तीर्थंकर मानते हैं। फिर उनकी देहकी अव गाहना जुदी २ होनेसे जुदे २ देव कहे जाते हैं और जिस २ भव्य जीवको जिस तीर्थंकरके शासन में समगित वा मोक्ष की प्राप्ति होय वो भव्य जीव उसी तीर्थंकरको विशेष अपेक्षा से देव मानता हुआ इस वास्ते अनन्ती चौबीसीमे अनते तीर्थंकर हुए तो द्रव्य करके अनन्ते देव हुए ये अनेक पक्षसे देवका स्वरूप कहा ऊपर लिखे को जानना सो तो गेय है वर्त्तमान की अपेक्षा लेकर देवको देव बुद्धि मानना सो उपादेय है, बाकी सब ह्येय है उत्सर्ग मार्ग से शुद्ध व्यवहारसे अपने में ही देव बुद्धि मानकर एकाग्र होना 'अन्यको निमित्त कारण मानना सो उत्सर्ग है अपवाद से जो सर्वको ऊपर लिखाया है, उसको विचार करना सो अपवाद है, इसी रीतिसे पांच बोल कहे अब सत्य पक्षमें भी येही पांच बोल उतार कर दिखाते हैं। सो प्रथम सत्य पक्षका स्वरूप कहते हैं। देवका द्रव्य देवका क्षेत्र देवका काल देवका भाव इन करके तो देवपना सत्य है तो द्रव्य क्या है कि गुण पर्यायका भाजन उसीको द्रव्य कहते हैं। क्षेत्र उसको कहते हैं कि जिसमें ज्ञानादि गुण रहें काल उत्पादवय अर्थात् जिस समय में ज्ञान है, उस समय में दर्शन नहीं और जिस समय में दर्शन है उस समय में ज्ञान नहीं इसी तरह जो ज्ञान और दर्शनका उत्पाद उसीका नाम काल है भाव उसको कहते हैं कि जो अपने स्वरूप में रमणता करना इस करके देव

सत्य है, अथवा देव उसीका नाम है जो तारने वाला है क्योंकि वो सत्य स्वरूपकाही उपदेशक है और सत्य स्वरूप ही है, जो उसके सत्य स्वरूपको देखकर उसके कहे हुए सत्य उपदेशको ग्रहण करके जो क्रिया करेगा सो सत्य स्वरूपको प्राप्त होगा, ये सत्य पक्षसे देवका स्वरूप कहा, अब इसमें पांच बोल उतारकर दिखाते हैं कि ऊपर लिखे स्वरूपको जानना सो तो ज्ञेय है और इसको निमित्त कारण जानकर अपनी आत्माके सत्यता को प्रगट करना वो उपादेय है। बाकी सब हेय है, उत्सर्ग मार्गसे तो अपनी आत्माका द्रव्य क्षेत्रकाल भाव संग्रह सत्ताको देखता हुआ विचार करना वही उत्सर्ग मार्ग है, अपवादसे देवके ही द्रव्य क्षेत्र काल भावमें अपने चित्तको लगाना उसीका नाम अपवाद है, अब असत्य पक्षमें भी ये ही पांच बोल उतार कर दिखातेहैं, प्रथम असत्य पक्षका स्वरूप कहते हैं। कि असत्य देव अर्थात् कुदेवका द्रव्य कुदेवका क्षेत्र कुदेव काल कुदेवका भाव इन चारों करके कुदेवके स्वरूपसे देवका स्वरूप असत्य है। जो कुदेवके स्वरूपसे देवका स्वरूप असत्य न माने तो कोई कार्य्यकी सिद्धि न होय इस वास्ते कुदेवकी अपेक्षासे सत्य देवभी असत्यहै ये असत्यपक्षसे देवका स्वरूप कहा ऊपर लिखे सर्वको जानना सो तो ज्ञेय है सुदेवके क्षेत्र काल भावमे कुदेवके द्रव्य क्षेत्र काल भावकी असत्यता मानना सो उपादेय है बाकी सब हेय है उत्सर्ग मार्ग से तो जो उपादेय है उसमें रमण रूप विचार सो ही उत्सर्ग है। अपवादसे उपादेयको जानना सोही अपवाद है इस रीतिसे असत्य पक्षमें पांच बोल कहे अब वक्तव्य अवक्तव्यका स्वरूप दिखाते हैं। वक्तव्य कहता देवका स्वरूप अनेक रीतिसे जिज्ञासुको समझाते हैं और स्तुति

आदिक करते हैं। परन्तु उसके गुण स्वरूपका पार नहीं आता है इस वास्ते अवक्तव्य स्वरूप है क्योंकि जैसा देवका स्वरूप है, वैसा मनुष्य देवताकी तो क्या चले परन्तु केवली भगवान ज्ञानसे जाने किन्तु वचनसे कह नहीं सके ये वक्तव्य अवक्तव्य पक्षसे देवका स्वरूप कहा, अब इस जगह पांच बोल उतार कर दिखाते हैं कि ऊपर लिखे स्वरूपको जानना सो तो ज्ञेय है और वक्तव्य शब्दसे जो देवका स्वरूप कहनेमें आवे वो उपादेय है बाकी सब हेय है उत्सर्ग मार्गसे तो भगवतकी स्तुति आदिकसे अपने चित्तको एकता करे और अपवाद मार्गसे जो भगवतकी स्तुति आदिक है उसका रहस्य जिज्ञासुको यथावत समझावे इसी रीतिसे ये पाच बोल कहे अब येही पांचो बोल भेद आदि स्वभावोंमें भी उतार कर दिखाते हैं सो प्रथम भेद स्वभावका स्वरूप कहते हैं कि देखो जितने तीर्थंकर होते हैं उन सबमें आपसमें अब गाहना लक्षणोंसे भेद होता है अथवा सामान्य केवलीसे तीर्थंकरोंमें भेद होता है क्योंकि तीर्थंकर महाराज त्रिगड़ामें बैठकर देशना देते हैं और सामान्य केवली बिना त्रिगड़ामें बैठकर देशना देते हैं, असुच्य केवली आदिक देशनाही नहीं देते हैं, एक तो इस रीतिसे भेद स्वभाव है, दूसरी रीति यह है कि जो भव्य जीव स्तुति आदिक करता है कि हे प्रभु मेरेको तारो भेद स्वभाव होनेसेही यह कहना बनता है अथवा २४ तीर्थ करोंको जुदा २ देव मानते हैं ये भेद स्वभावसे देवका स्वरूप कहा अब इनमें हेय गेय आदि पांचो बोल उतार कर दिखाते हैं कि गेय नाम तो ऊपर लिखे हुए स्वरूपको जानना और असुच्य केवली आदिकको हेय कहता छोड़ना क्यों कि जो

देशना नहीं देते इस लिये किसी भव्य प्रानीका उपकार नहीं बनता इसको हेय अर्थात् छोड़ना कहा उत्सर्ग मार्गसे तो तीर्थ कर आदिकोको भेद स्वभाव निमित्त कारण पुष्ट अवलम्बनसे तारने वाला समझ कर स्तुति आदिक करे अपवादसे निमित्त आदि न मान कर केवल भेद आदिकसे स्तुति आदिक करना सोही आपवाद है अब अभेद स्वभावमें भी येही पांचो बोल उतार कर दिखाते है सो प्रथम अभेद स्वभावका स्वरूप कहते हैं कि जितने तीर्थंकर हुए अथवा जितने सामान्य केवली हुए इनमे कोई तरहका भेद नहीं है क्योंकि अपने २ ज्ञान दर्शन चारित्रमे रमणता करना येही सबका स्वभाव है इस रमणता रूप स्वभावसे किसीमे फर्क नहीं अथवा जिस वक्तमें जो कोई भव्य जीव व्यवहार नयसे स्तुस्ति करता हुआ देवकी व्यक्ति भाव स्वरूपको विचारता हुआ ऋजु सूत्रनयकी अपेक्षासे अपनी शक्ति भावमें उस देवकी व्यक्ति भावका अध्यारोप अभेद करके अभेद स्वभाव मानता है यह अभेद स्वभावसे देवका स्वरूप कहा अब इसमे पांच बोल इस रीतिसे उतरते हैं कि ऊपर लिखी रीतिको जानना उसका नाम तो गेय है, और हेय इस जगह कुछ नही है सबमें अभेदका करना वोही उपादेय है और इस जगह उत्सर्ग अपवाद भी कुछ नहीं है परन्तु भव्यजीवके विचार अपेक्षासे जो ऋजु सूत्रधनयको ग्रहण करनेसे जो भव्य जीव उस देवकी व्युक्ति रूप प्रगट हुआ जो ज्ञान दर्शन चारित्र उस ज्ञान दर्शन चारित्रका अपनी शक्ति रूपमें अध्यारोप अभेद करके करना इसी रीतिका जो विचार सो अति उत्सर्ग है अपवादसे तो जो उपादेयमे ग्रहण किया है, सोही अपवाद है, इसी रीतिसे उत्सर्ग अपवाद कहा, अब इन्हीं

पांचो बोलको भव्य स्वभाव और अभव्य स्वभावमें भी लिख कर दिखाते हैं सो प्रथम भव्य अभव्यका स्वरूप दिखाते हैं कि भव्य नाम उसका है जिसका पलटण स्वभाव हो तो देखो जो देवका भव्य स्वभाव न होतो जो गेयका पलटण रूप इसको कदापि न देख सके अथवा जो भव्य जीव देवके स्वरूपको विचारे हैं उस वक्त जो २ देवके स्वरूपके गुणादिकोको स्मर्ण रूप करता हुआ त्यों २ उस भव्य जीवका परिणाम जो है उस प्रभूके गुण अनुयायी पलटता हुआ चला जाता है, तो देवका भव्य स्वभाव होनेसे उस देवको मानने वाला भी भव्य स्वभाव हुआ अब इससे जो विपरीति स्वभाव है जो कदापि न पलटे उसको अभव्य स्वभाव कहते हैं तो जो देवमें देवपना प्रगट हुआ सो कदापि न पलटेगा अथवा जो कोई भव्य जीवने शुद्ध निश्चयनयसे जो देवका स्वरूप ओलख लिया वो उस भव्य जीवसे देवका स्वरूप कदापि न जायगा इस रीतिसे भव्य अभव्यका स्वरूप कहा अब इसमे पांच बोल इस रीतिसे उतरते हैं कि ऊपर लिखे स्वरूपको जानना उसका नाम तो गेय है और जो अभव्य जीव देवके स्वरूपको विचारते हैं उस वक्तमें जो देवके गुणादिकों स्मर्ण करता हुआ अपने परिणाममे उस प्रभूके गुण अनुयायी अपने गुणोंको करता है वही उपादेय है बाकी सब हेय है उत्सर्ग मार्गसे तो जो प्रानी अपने आतम गुणमें प्रवर्त्तावे वही उत्सर्ग है और अपवादसे जो हम ऊपर लिख आये हैं देवका स्वरूप उसको विचारना सो आपवाद है और इससे जो विपरीत सो अभव्य स्वभावमे जान लेना अथवा जिस रीतिसे हम भव्य स्वभाव को कह कर अभव्य स्वभावको ऊपर लिख आये हैं। उसी रीतिसे जिज्ञासु पांच बोल अभव्य स्वभावमें समझ लेय अब नित्य अनि

त्य स्वभावका स्वरूप लिखते हैं। देवमें भव्य जीवको तारनेका ही नित्य स्वभाव है अथवा जो ज्ञान दर्शन चारित्र उसमें जो रमणता वो ही उसका नित्य स्वभाव है इससे जो विपरीत सो अनित्य स्वभाव है। अर्थात् पर वस्तुमें न रमणता करना उस पर वस्तुमे प्रवर्त्त न होना इसकी अपेक्षा करके अनित्य स्वभाव है। अथवा जो जीव उसको देव न माने उस जीवको वो न तारसके इस अपेक्षासे देवका अनित्य स्वभाव हुआ अब इनमेंभी पांच बोल इसरीतिसे उतरते हैं। सो ही दिखाते हैं कि ऊपर लिखे स्वरूपको जानना सो तो गेय है जो ज्ञान दर्शन चारित्र उसमें जो रमणता करना वही उसका नित्य स्वभाव है, ऐसा जो विचार रूप सो उपादेय है, वाकी सब हेय है, उत्सर्ग मार्गसे तो देव सदा अपनेही स्वरूपमे रमणता करता है, ऐसा जो विचार सो उत्सर्ग है और जो दूसरेको तारनेमे यह देवका स्वरूप निमित्त कारण है, ऐसा जो विचार सो अपवाद मार्ग है इस रीतिसे ५ वोल कहे अव परम स्वभावमे भी यही ५ वोल उतार कर दिखाते हैं। सो प्रथम परम स्वभावका स्वरूप कहते हैं। कि जो भव्य जीव देवको देव वुद्धि मानकर उनके उपदेशको अंगीकार करें उसीको वे तारते हैं। उनमे जो तारनेका स्वभाव सो ही परम स्वभाव है, यह देवमे परम स्वभाव कहा अव इस जगह इसरीतिसे ५ बोल उतरते हैं कि ऊपर लिखे स्वरूपको जानना सो तो गेय है उनको देव वुद्धि मानकर निमित्त कारण जानकर उनके उपदेशको अंगीकार करना सो उपादेय है, वाकी सब हेय है, उत्सर्ग मार्गसे तो भव्य जीव ऐसा समझकर ग्रहण करे कि जो इनकी आज्ञा है, सो ही मेरेको तारेगी यही इनका परम स्वभाव है। अपवाद मार्गसे

विचारके विना तारनेवाला देव है और कुछ उद्यम न करना उसका नाम अपवाद है अब छ. कारकोंमें भी येही पांच बोल उतार कर दिखाते हैं। सो प्रथम छ. कारका स्वरूप कहते हैं। ३८ कर्त्ता (३९) कर्म (४०) कारण (४१) सम्प्रदान (४२) अपादान (४३) आधार जिस वक्तमें जो जीव देवपना प्रगट करनेको प्रवर्त्त होता है वो जीव कर्त्ता है और देवपना प्रगट होनावो उसका कार्य्य है और जो सुकलध्यानादिकसे जो गुणठाणेका चढना वो उसमें कारण है जिसके अर्थ कार्य्यको करे उसका नाम सम्प्रदान है तो इस जगह सम्प्रदान कौन है कि आत्मामें रमणके वास्ते ये सम्प्रदान हुआ अपादान उसको कहते हैं कि पहली पर्याय काव्यय होना और नवीन चीजका उत्पाद होना उसका नाम अपादान है, तो इस जगह चार कर्म घातियांका क्षय होना और अनन्त ज्ञान अनन्त दर्शन अनन्त चारित्र अनन्त वीर्यका प्रगट होना यह इस जगह अपादान हुआ आधार उसको कहते हैं, कि जो प्रगट हुई चीजको धार रक्खे तो इस जगह आधार कौन है कि जो गुण प्रगट हुए उनको आत्माने धारण किये इस लिये आत्मा आधार है। अब इस जगह भी पांच बोल उतारकर दिखाते हैं, कि ऊपर लिखे स्वरूपको यथावत जानना सो तो ज्ञेय है, और करम और अपादान उपादेय है, वाकी सब ह्येय है। उत्सर्ग मार्गसे करता करण आदिकोंसे व्यौपार करता हुआ अपादानसे गुणको प्रगट करके अपनेमें धारण करे अपवाद मार्गसे गुण प्रगट न होय तो केवल विचार रूप कर्म कारण आदिकोंमें किया करें (प्रश्न) आपने कर्त्ता आदि छओं कारकोंमें शामिल करके पांचों बोल उतारे और एक २ में जुदे २ पांच बोल न उतारे

सो जुदे २ पाचो बोल उतारकर दिखाने चाहिये (उत्तर) भो देवानुप्रिय इस तुम्हारे प्रश्नका उत्तर ऐसा है, कि इस जिनमतमें स्याद्वाद शैलीको जानने वाले पुरुप थोडे हैं और कर्त्ताके आशय जाने विदून अपनी मनो कल्पना करके शुद्ध मार्गसे भ्रष्ट होकर अपनी इन्द्रियोंका भोग करनेके वास्ते विपरीत्त अर्थ समझकर कुमार्गमे प्रस्तहो जाते हैं, क्योंकि इस स्याद्वाद सिद्धान्तमें कोई वचन तो नयकी अपेक्षासे है, कोई वचन उत्सर्ग है, कोई अपवाद है, कोई कारण है, कोई कार्य्य है,कोई चारितानुवाद है कोई वचन प्रवृत्ति मार्गका है, कोई द्रव्यार्थिक है, कोई पर्यार्थक है। इत्यादि अनेक रीतिसे इस जैन मतके जानकर वचनोंको प्रति पादन करते हैं, सो उन वचनोंके रहस्य न जानकर दुःख गर्भित मोह गर्भित वैराग्यवाले इधरके उधर लगाय देते हैं, इस लिये मैंने इन छओ कारकोको एक साथ उतार कर दिखाया था परन्तु अब तुम्हारे प्रश्न करनेसे किंचित्‌भावार्थ इन छओ कारकोंके ऊपर जुदा २ उतारकर दिखाते हैं । सो प्रथम कर्त्तामेही पांचो बोल इस रीतिसे कि प्रथम कर्त्ता दो प्रकारका कर्म करता है सो इस जगह मुख्य कर्त्ता कौन है, कि जीव सो वह जीव दो तरहके कर्म करे है। एकतो संसारकी वृद्धि होनेका सो उस संसारकी वृद्धि करनेवाला भी कर्त्ता जीव है । दूसरा कर्म जो संसार की निरवृत्ति का करना अर्थात् जन्म मरण का मिटाना सो इन दोनोका कर्त्ता जीव हुआ सो इन दोनो प्रकारके कर्म करनेकी जो कृति अर्थात् परिणाम उसको जानना उसका नाम तो ज्ञेय है अब इसमेंसे संसारकी वृद्धि होनेका परिणाम उस कृतिको तो हेय अर्थात् छोड़ यह इस जगह हेय हुआ । और जो

निरवृत्ति होनेका जो पारिणाम अर्थात् जिससे जन्म मरण मिटे उसमें अपने पारिणाम अर्थात् कृति को ग्रहण करे यह उपादेय है और उत्सर्ग मार्ग से तो जिसमें निरवृत्ति होकर अपना आत्मस्वरूप प्रगट होय उसीं कामं को कर्त्ता करे कदाचित ऐसा न होय तो अपवाद मार्ग से शुभ वन्धादिक कर्त्ता बने क्योंकि शुभ बन्धका कर्त्ता वनेगा तो शेष में वोभी निरवृत्ति के ही फलका साधक होगा इस रीतिसे कर्त्तामें ५ बोल कहे । इस रीति से सव कारकों के ऊपर जान लेना । अव सात नयके ऊपर ५ बोल उतारते हैं । सो प्रथम सातो नयोंका स्वरूप कहते हैं । नय गम नयसे जिस वक्तमे तीर्थंकर महाराजका जन्म हुआ उस वक्तमें सुधरमा इन्द्र ने अवधि ज्ञानसे भगवतका जन्म जान अपने देव लोकमें घटा वजाया। इस रीतिसे चौंसठ इन्द्र भगवतका जन्म महोत्सव के वास्ते भगवतको मेरु पर ले जाय कर महोत्सव करके अपने जन्म को सफल करते हैं इस जगह भगवतका पूजा अतिशय प्रगट हुआ अब संग्रहनयसे स्वरूप कहते हैं कि जब भगवत लोकां-तक देवता आयकर वर धाप अर्थात् विनती करने लगे कि हे प्रभु तीर्थको प्रवर्त्तावो और भव्य जीवोको तारो फिर भगवान बर्सी दान देने लगे । और फिर बर्सी दानदेकर दीक्षाके उत्सवमे मनुष्य और देवता सब इकट्ठे होकर के वनमें जहां उनको दीक्षा लेनी थी वहां जाय पहुंचे यहां तक संग्रहनयका स्वरूप हुआ । अव व्यवहारनय से कहते हैं कि जव भगवतने आभरणादिक सव उतार कर सर्ववृत सामायक उच्चारण किया और पंच मूष्ठी लोच करके अनगार अर्थात् साधु वन गये और पांच सुमती तीन गुप्ती पाल ते हुये देशोमें विचरने लगे । यहां तक व्यवहारनय

हुआ अब ऋजु सूत्र नयका स्वरूप कहते हैं कि जब भगवत अपनी आत्माका अन्तरग उपयोग देकर आठमें गुण ठानेमें सविकल्प प्रथकत्व सप्रविचार शुकल ध्यानका प्रथम पायामें आत्म स्वरूप विचारने लगे।यहां तक ऋजुसूत्रनयसे हुआ अब शब्दनयसे देवका स्वरूप कहते हैं। कि जब क्षीण मोही बारहवे गुण ठानेको प्राप्त हुए तब एकत्व वितर्क अप्रविचार नामा दूजे पायेमें स्थित होकर चार घनघाती कर्मको क्षय करते हुए यहांतक शब्दनय हुआ। अब संभ्रूढनयसे देवका स्वरूप कहते हैं कि जब चार घनघातिकर्म को क्षय किया उसी वक्त केवल ज्ञान, केवल दर्शन उत्पन्न होकर लोक अलोक के भूत भविष्य, वर्त्तमान कालसे स्वरूप को दर्शनसे देखते हैं ज्ञानसे नते हैं यहांतक संभ्रूढ नयसे देवका स्वरूप हुआ। अब एवंभूत नयसे देवका स्वरूप कहते हैं कि जब भगवतको केवल ज्ञान केवल दर्शन उत्पन्न हुआ उसी वक्त ६४ इन्द्र आय कर चार निकायके देवताने मिलकर सामोसरण की रचना करी और आठ महा प्रात्यिहार संयुक्त सिंहासनके ऊपर भगवत विराजमान हुए तीन छत्र शिरके ऊपर ढले हुए इन्द्रचवर करते हुए तीनो तरफ तीनों विम्ब सहित भगवत विराजमान होते हुए चौंतीस अतिशय ३५वाणीकर बारह परखदा के सामने देशना देते हैं। उस वक्त एवं भूत नय वाला देव माने ७ नय करके देवका स्वरूप कहा इन नयोमे पांच बोल उतार कर दिखाते हैं। सो प्रथम तो एक रीति यह है कि जो हम सातो नयका स्वरूप ऊपर लिख आये हैं उसको जानना सो तो ज्ञेय है और इनमेंसे तीन नयका स्परूप जो ऊपर लिखा हैं, सो द्रव्यार्थक की अपेक्षा होनेसे हेय अर्थात् छोड़नेके योग्य है,

बाकी सब उपादेय अर्थात् ग्रहण करने योग्य है क्योंकि वैसे तो शब्दनयसे ही ग्रहण करनेके योग्य था परन्तु ऋजु सूत्रनय उत्तर २ गुण विशुद्ध होनेसे पर्यार्थिक की अपेक्षासे उपादेय कही और इन नयोंमें उत्सर्ग मार्ग से तो केवल एवं भूतनय है क्योंकि देखो जिस वक्तमे तीर्थंकर महाराज समोसरणके बीच त्रिगडामें विराजमान होकर बारह परखदामें बैठे हुए भव्य जीवों को आत्म स्वरूप का उपदेश देते हैं उस उपदेशके होनेसे अनेक भव्य जीव परमपद को प्राप्त होते हैं इस रीतिका जो विचार वो उत्सर्ग मार्ग है और अपवाद मार्ग इसमे ऐसा है कि किंचित् शब्दनय और संभ्रूढ़नय जो गुण अर्थात् ऊपर लिखे स्वरूपको विचारना सो अपवाद मार्ग है एक तो इस रीतिसे हुआ अब दूसरी रीति से एक २ नयमे ५ बोल उतारकर दिखातेहैं सो पेश्तर एक२ नयका स्वरूप फिर दिखाते हैं। नय गमनयसे जिस वक्तमे तीर्थंकर महाराज का जन्म हुआ उस वक्त सुधरमा इन्द्रने अवधि ज्ञानसे देव भगवतका जन्म जान अपने देव लोकमें घंटा वजाया इस रीतिसे ६४ इन्द्र भगवतका जन्म महोत्सवके वास्ते भगवतको मेरु पर ले जाय कर महोत्सव करके अपने जन्मको सफल करते हैं इस जगह भगवतका पूजा अतिशय प्रगट हुआ और इस नय गमनयके संकल्प आरोप और एक अंश उत्पन्न होनेसे भी वस्तुको यथावत मानता है। इसीलिये इसका नाम नयगम है क्योंकि इसमें किसी तरह का गम नहीं हैं। दूसरा इसमे भूत,भष्वियत,वर्त्तमान कालसे भी कई तरहके भेदोंसे द्रव्यानुयोग के जानने वाले गुरू यथावत समझाय सकते हैं। अब इस ऊपर लिखे में पांच बोल इस रीति से हैं कि ऊपर लिखे हुए को यथावत जानना उसका नाम तो गेय है और संकल्प अथवा

अध्यारोप आदिक कोई अपेक्षासे ह्येय है. बाकी सब उपादेय है, जो उपादेय है सौही उत्सर्ग मार्ग किसी अपेक्षासे है और जो अपेक्षाको न समझे उसके वास्ते जो एक अंश उत्पन्न होना वही उत्सर्ग मार्ग है जो अंशका उत्पन्न न होना और अध्यारोपको अंगीकार करे वो कोई अपेक्षासे अपवाद है इस रीतिसे नय गम नय मे५ वोल कहे अव संग्रह नयमें भी ये ही पांच वोल उतार कर दिखाते हैं सो पेश्तर संग्रह नयका स्वरूप कहते हैं। कि जव भगवतको लोकान्तक देवता आय कर वरथाप अर्थात् विनती करने लगे कि हे प्रभु तीर्थको प्रवर्तावो और भव्य जीवोको तारो फिर भगवान वर्सीदान देने लगे और फिर वर्सीदान देकर दिक्षाके उत्सवमें मनुष्य और देवता सव इकट्ठे होकरके वनमें जहां उनको दिक्षा लेनी थी वहां जाय पहुंचे यहां तक संग्रह नयका स्वरूप हुआ, सो इस संग्रह नयके भी कई भेद हैं। और इस संग्रह नयमे केवल सत्ताका ग्रहण है और एक वातके कहने से जितने उस वस्तुके अवयव हैं उन सवको ग्रहण कर लेता है अथवा जो एक कार्य्यके जितने कारण हैं। उनकारणों में से एकका भी नाम लेनेसे सर्व कारणोको इकट्ट करलेता है इसीलिये इसका नाम सग्रह है सो इस संग्रह नयमें भी ५ वोल उतार कर दिखाते हैं कि ऊपर लिखे स्वरूपको जानना उसका नाम तो गेय है और इसमे उपादेय वह है कि जो तीर्थ प्रवर्तानेके वास्ते वर्सीदान देकर दिक्षा लेनेके सन्मुख हुए इस जगह भी अपेक्षा से ऊपर लिखी वस्तु उपादेय है बाकी सव ह्येय है, उत्सर्ग मार्गसे तो जो भगवतने अपने आत्म गुणको आधान आवर भाव

करनेके वास्ते चित्तको सन्मुख किया सो उत्सर्ग है, और अप-वाद मार्गसे तो तीर्थ आदिकका प्रवर्ताना और बर्सीदानका देना यहभी उनकी पुण्य प्रकृतिका भोग और संसारका उद्धार ऐसा जो विचार सो अपवाद मार्ग है इस रीतिसे पाच बोल कहे अब व्यवहार नयका स्वरूप कहकर पांचो वोल उतार कर दिखाते हैं। पेश्तर व्यवहार नयका स्वरूप कहते हैं। कि जब भगवतने आभ-रणादिक सब उतार कर सर्बवृत सामायक उच्चारण किया और पंच मुष्टी लोच करके अनगार अर्थात् साधु वन गये और पांच सुमती ३ गुप्ती पालते हुए देशोंमें बिचरने लगे और सब जीवोंकी आत्माको अपनी आत्मा के समान जानने लगे और सदा सर्वदा समता भाव में प्रवर्त होते हैं। इस जगह कोई ऐसी शंका करे कि क्या जब सर्ववृति सामायक उच्चारण नहीं किया था उस वक्त उनका समता परणाम न होगा इस शंकाका ऐसा समाधान है, कि सत्ता और अन्तरंग परणामसे तो भगवतका तीन ज्ञान सहित गर्भमें आते हैं तभी से समता भाव रहता है परन्तु प्रत्यक्ष देखने मे जब तक ग्रहस्थ आश्रम में रहे तब तक माता पिता पुत्र कलित्रादि सम्बंधियोंसे अथवा राजकाज सम्बन्धी आदिक कार्योंमें प्रवर्त होनेसे वाह्य रूप समता परणाम देखनेमें नहीं आता इसलिये यह व्यवहार नयवाला गुण प्रतिक्ष देखे बिदून माने नहीं जो गुण वाह्य देखनेमें आवें उसीको अंगीकार करें इसी लिये इसको व्यवहार नय कहते हैं, सो इसमें भी ५ बोल इसीरीतिसे उतरते हैं, कि ऊपर लिखे स्वरू-पको जानना उसका नाम तो गेय है और उपादेय इसमें इस रीतिसे है, कि पांच सुमती और ३ गुप्ती पालते हुए ग्राम नगर

आदिमें विचरना सो उपादेय है, और बाकी सब किसी अपेक्षासे ज्ञेय है, और उत्सर्ग मार्गसे तो पांच सुमती और तीन गुप्तीमें लीन होना और आतम गुणके प्रगट करनेमें जो उद्यम सो उत्सर्ग है, अपवाद मार्गमे जो कर्मोंके बस करके परीसा आदिकोंका सहना और उसमें जो कोई तरहका किंचित् परमादका होना सो अपवाद मार्ग है, इस रीतिसे व्यवहारमें ५ बोल कहे अब ऋजु-सूत्र नयमें ५ बोल उतारनेके वास्ते प्रथम ऋजुसूत्र नयका स्वरूप कहते हैं, कि जब भगवत अपनी आत्माका अन्तरंग उपयोग देकर आठवे गुणठाणेंमें साविकल्प प्रथक्त्वसे पर बिचार सुकुल ध्यानका प्रथम पायेमें आत्म स्वरूप बिचारने लगे यहां तक ऋजुसूत्र नयका स्वरूप हुआ, अब इसमें ५ बोल उतारते हैं, कि ऊपर लिखे स्वरूप को जानना सो तो गेय है, और आतम स्वरूपको विचारना सो उपादेय बाकी सब ह्येय है, और जो उपादेय है, सो ही उत्सर्ग है इस जगह तीर्थकरोंकी अपेक्षा लेकरके तो कोई अपवाद नहीं है,परन्तु सामान्य आरिहन्तोकी अपेक्षासे जीव आठवे गुणठाणे ऊपर न चढ़सके और पडवाई भावसे नीचे आ पडे इस अपेंक्षासे अपवाद मार्ग घट सकता है। सो वह अपवाद मार्ग आठवें गुणठाणेसे पडकर सातवें छठे गुणठाणे का जो विचार सो अपवाद मार्ग है इस रीतिसे ऋजु सूत्र नयमें ५ वोल कहे अब शब्दनयमें ५ वोल उतारनेके वास्ते प्रथम शब्द नयका स्वरूप लिखते हैं कि जब क्षीण मोही बारहवें गुण ठाणे को प्राप्त हुए तब एकत्व वितर्क अप्रविचार नामा दूजे पायेमे स्थित होकर चार घनघाति कर्मको क्षय करते हैं। यहां तक शब्दनय हुआ। अब इसमें ५ वोल उतारने हैं ऊपर लिखे स्वरूपको जानना सो तो गेय

है ! और निर्विकल्प होकर जो अपनी आत्मामें स्थित अर्थात् गुण गुणीका एक स्वरूप जान कर लय होना सो ही उपादेय है बाकी सब हेय है। अब इस जगह कोई ऐसी शंका करे कि चार कर्म घनघातियों का क्षय किया उसको उपादेय क्यों न कहा? इस शंका का समाधान ऐसा है कि जब जो शख्स अपनी आत्मा स्वरूपमें लय होगया तो कर्मोंका क्षय आपसे आप ही हो जायगा क्योंकि देखो जैसे किसी पुरुषसे कहा कि इस कपड़े को धो लाओ तो उस धोनेके नाम लेने से ही वुद्धिवान पुरुष जान लेते हैं कि इसका मैल दूर होगा। परन्तु ऐसा कोई नहीं कहता कि इस कपड़ेको धो लावो और इसका मैल दूर कर आवो। तैसे ही जो पुरुष अपनी आत्मामें एकत्व भाव करके लीन है, उनके कर्म आप ही क्षय हो जायंगे। ईसालये उपादेय नहीं किन्तु हेय है जो उपादेय है सो ही इस जगह उत्सर्ग मार्ग है और अपवाद मार्ग इस जगह कुछ नहीं बनता। इस रीति से शब्दनयमें ५ बोल कहे अब संभूढ नयमें पांच बोल उतारनेके वास्ते पेश्तर संभ्रढ़ नयका स्वरूप कहते हैं। कि जब चार घन घाति कर्मको क्षय किया उसी वक्त केवल ज्ञान केवल दर्शन होकर लोकालोकके भूत भविष्यत, वर्तमान कालसे स्वरूपको दर्शनसे देखते हैं ज्ञानसे जानते हैं। इस रीतिसे संभ्रढ़ नयवाला मानता है, अब इस में ५ बोल इस रीतिसे उतारते हैं। कि ऊपर लिखे स्वरूप को जानना सो तो गेय है और लोकमें जो पदार्थ अथवा अलोकमें कुछ पदार्थ नहीं है इन दोनोंके स्वरूपको तीन काल अर्थात् भूत भविष्यत, वर्तमानको एक समय में ही देखे और

जाने यही उपादेय है, बाकी सब हेय है, जो उपादेय है, सोही उत्सर्ग मार्ग है और अपवाद मार्ग कोई नहीं है हां अलबत्ता इस अपेक्षासे अपवाद बनता है कि जिस समय में ज्ञान है, उस समय में दर्शन नही जिस समय में दर्शन है उस समय में ज्ञान नही इस रीतिसे अपवाद मार्ग बनता है परन्तु इस ज्ञान दर्शन मे समयका अन्तर होनेमें शास्त्रोंमें टीका कारोंके बहुत विवाद हैं। सो नन्दी सूत्रकी टीका आदि वा अन्य ग्रंथों में है सो वे ग्रंथ मेरे पास नही है इसलिये मैं नहीं लिख सक्ता इस रीतिसे संग्रह नयमे ५ बोल कहे अब एवं भूत नयमे कहनेके वास्ते पेश्तर एवं भूत नयका स्वरूप कहते हैं। कि जब भगवतको केवल ज्ञान केवल दर्शन उत्पन्न हुआ उसी वक्त ६४ इन्द्र आयकर चार निकायके देवतोंने मिलकर समोसरणकी रचना करी और आठ महा प्रतिहार संयुक्त सिंहासनके ऊपर भगवत विराजमान हुए तीन छत्र सिरके ऊपर ढले हुए इन्द्र चंवर करते हुए तीनो तरफ तीनो विम्ब सहित भगवत बिराजमान होते हुए ३४ अतिशय ३५ वाणीकर बारह परखदाके सामने देशना देते हैं उस वक्त एवंभूत नयवाला देव माने अब इस जगह पांच बोल इस रीतिसे उतारते हैं। कि ऊपर लिखे स्वरूपको जानना सो तो गेय है और इस जगह हेय कुछ नहीं है, कुल स्वरूप ऊपर लिखा हुआ उपादेय है, और उत्सर्ग मार्ग से तो भगवत देशना देते हैं। उस देशनाको सुनकर अपने आतम तत्वको जाने ग्रहण करे और जिससे अपनी आत्म गुण त्रोधान (दवा हुआ) है सो आवर भाव (प्रगट) होय इस रीतिसे उत्सर्ग है और अपवाद इस जगहसे ऐसाहै कि ज्ञानावर्नी कर्मके क्षय न होनेसे तत्वका विचार तो देशना सुनकर न हो

परन्तु जो भगवतके समोसरण आदिककी रचना और प्रभूका वैभव देखकर उसमें चित्तका लगाना वा बिचारना सो अपवाद मार्ग है, इस रीतिसे एवंभूत नयमें पाचो बोल कहे सो दो रीतिसे तो इन सातो नयमें उतार कर दिखाये अबतीसरे रीतिसे इन्हीं सातो नयमें फिरभी पांचो बोल उतार कर दिखाते हैं, सो इस तीसरी रीतिमें जुदी २ नयका स्वरूप और साधन रूप अपवाद और उत्सर्ग लिखकर पीछेसे पांचो बोल उतारेंगे परन्तु पाठक गणोंके समझानेके वास्ते जिस नय से देवका स्वरूप लिखेंगे उस जगह शेष मे एक का अंक रख देंगे और जो अपवाद मार्ग से साधन अर्थात् देवकी सेवा रूप नयका वर्णन करेंगे। उस जगह दो २ का अंक रख देंगे और जिस जगह उत्सर्ग अर्थात् देवकी सेवासे साधन रूप नयका स्वरूप लिखेंगे उसके अन्तमें तीन ३ का अंक लिख देंगे इस जगह एक १ दो २ तीन ३ अंक जतानेका अभिप्राय यह है कि अंक का नाम लेने ही से हेय, गेय, उपादेय अथवा उत्सर्ग अपवाद पाठक गण समझ लेय क्योंकि दुबारा लिखनेसे ग्रंथ बढ जाय और दूसरा सबब यह है जिन जिज्ञासुओंको शुद्ध गुरूका संग नहीं हुआ है वे जिज्ञासु अभिप्राय न जाननेसे ऐसा कहने लगते हैं कि एक बातको ही बार २ लिख दिया है इसलिये हमने संक्षेप करनेके वास्ते और जिज्ञासु को खुलासा होनेके वास्ते इसारे मात्र दिखा दिया है सो अब प्रथम नयगमनयसे देवका स्वरूप और साधन रूप लिखते हैं कि जिस वक्त में तीर्थकर महाराजका जन्म हुआ उस वक्तमें सुधरमा इन्द्रने अवधि ज्ञान से देव भगवतका जन्म जान अपने देवलोकमें

धंटा बजाया इसी रीतिसे ६४ इन्द्र भगवतका जन्म महोत्सवके वास्ते भगवतको मेरु पर लेजाय कर महोत्सव करके अपने जन्म को सफल करते हैं इस जगह भगवतका पूजा अतिशय प्रगट हुआ और इस नयगम नयके संकल्प आरोप और एक अंश उत्पन्न होनेसे भी वस्तुको यथावत मानता है, इसी लिये इसका नाम नयगम है, क्योंकि इसमें किसी तरहका गम नहीं है, दूसरा इसमें भूत भविष्यत वर्तमान कालसे भी कई तरहके भेदोंसे द्रव्यानु जोगके जाननेवाले गुरू यथावत समझाय सक्ते हैं, यह प्रथम अंक हुआ अब दूसरा २ अंक लिखते हैं, कि कोई आत्मार्थी भव्य जीव श्रीहारिहन्त रूप स्वजाती अन्य द्रव्य है, उसके स्वरूपको चिन्तवन करे कि चेतनाका अंश प्रभूके गुण अनुयायी रूप संकल्प करे कैसा संकल्प करे कि पेश्तर ऐसा संकल्प कदापिन हुआ था और वो संकल्प विषय आदिकसे न्यारा होकर केवल प्रभू गुणमें ही लगाना क्योंकि प्रभू निमित्त कारण है, इस लिये निमित्त कारणका अवलम्बन (सहारा) होनेसे अन्तरंग (दिली भीतरी) परिणाम वधने (बढ़ने) संकल्प रूप होनेसे नय गम नय साधन रूप देवकी सेवा जानना क्योंकि आतम सिद्धि प्रगट करनेका कारण है, यह दूसरा अंक हुआ अब तीसरे अंकमें अति उत्तम साधन रूप सेवा नय गमनयसे कहतेहैं कि जब आत्मा में शंकादिक ५ अतीचार करके रहित क्षायिक आत्म तत्व निरधार रूप शुद्ध समगत रूप गुण प्रगटे तब आत्मा साधनका एक अंश प्रभुता रूप गुण प्रगट होनेसे आत्माका एक अंश कार्य होता है। इसलिये नयगमनय साधन रूप भाव सेवा शुद्ध व्यवहार से है और इसी शुद्ध व्यवहारको उत्सर्ग मार्ग भी कहते हैं। अब इस

जगह कोई ऐसी शंका करे कि जो गुण प्रगट हुआ है उसको साधन सेवा रूप क्यों कहते है। तिसका समाधान ऐसाहै कि जो तनमय पना होकर रहना सो ही साधन रूप सेवाका अर्थ है क्योकि देखो यह तनमय पनेका होना अथवा जो एक अंशरूप प्रगट हुआ है सो आत्माके अनन्त गुणोंका साधक है इसलिये इसको सेवा कही क्योंकि जितना उपादान कारण से कार्य्य प्रगट होय, उतना कार्य्य अगाड़ीके कार्य्यका साधन है इस लिये इसको साधन रूप भावसेवागवेषी अर्थात सर्वज्ञोंने देखी यदि उक्तं आप्तमींमासायां "उवयाणं उस्सग्गो निमित्त समवाय सुद्ध दवोत्ति" इस रीतिसे टीकामें कहा है इस लिये उपादान कारणकी जो निष्पत्ति सोही उत्कृष्ट साधन रूप सेवा जाननी क्योंकि आत्माका अनंता गुण है तिसमेंसे एक समगत रूपगुण प्रगट हुआ है सो आत्माका एक अंश उत्पन्न हुआ इस लिये यह नयगम नयउत्कृष्ट साधन रूप भावसेवनासे आतम गुणकी प्रभुता प्रगट हुई यह तीसरा ३ अंक पूरा हुआ अब इसमें पाचो बोल उतारकर दिखाते हैं कि जो हमने तीनों अंकोमें स्वरूप लिखा है उसको यथावत जानना सो तो गेय है और जो इस जगह कोई अपेक्षा न लेय तब तो तीनों अंकोका स्वरूप उपादेय है ह्येय कुछ नही है और जो साधनकी अपेक्षा करे तो प्रथम अंकका लेख ह्येय अर्थात् छोड़े और दूसरे अंकको उपादेय अर्थात् ग्रहण करे कदाचित् और भी विशेष सुद्ध साधनकी अपेक्षा करे तो पहला १ और दूसरा २ दोनों अंकोकी लिखी हुई व्यवस्था ह्येय अर्थात् छोड़े और केवल तीसरे ३ अंककी जो लिखी हुई व्यवस्था है उसीको उपादेय अर्थात् ग्रहण करे और उत्सर्ग मार्गसे तो जो भव्य

जीव आत्मार्थी अपनी आत्माका कल्याण करना शीघ्र चाहें तो जो व्यवस्था हमने तीसरे ३ अंकमें लिखी है उस लिखे अनुसार ध्यानस्थित होय अथवा वारम्बार विचार रूप मनन करे कदाचित इसमें चित्त न ठहरे तो अपवाद मार्गसे जो हमने दूसरे २ अंकमे विचारनेकी व्यवस्था लिखी है, उसको वारम्बार विचार कर और विषय आदिकसे दिलको हटा और प्रभू गुणमें लगावे इसरीतिसे नय गम नयमे ५ वोल कहे अब संग्रह नयसे स्वरूप कहते हैं कि जब भगवतको लोकान्तक देवता आयकर वरधाप अर्थात् विनती करने लगे कि हे प्रभुतीर्थको प्रवर्तावो और भव्य जीवोको तारो फिर भगवान वर्सीदान देने लगे और फिर वर्सीदान देकर दीक्षाके उत्सवमें मनुष्य और देवता सव इकट्टे हो करके वनमें जहां उनको दिक्षा लेनी थी वहांजाय पहुंचे यहांतक संग्रह नय हुआ सो इस संग्रह नयके भी कईभेद है और इस संग्रह नयमें केवल सत्ताका ग्रहण है और एक वातके कहनेसे जितने उस वस्तुके अवयव हैं उन सवको ग्रहण कर लेता है अथवा जो एक कार्यके जितने कारण हैं उन कारणोंमेंसे एकका भी नाम लेने से सव कारणोंको इकट्ठा करलेता है इसी लिये इसका नाम संग्रह नय है यह पहला अंक हुआ अब दूसरे अंककी व्यवस्था संग्रह नयसे दिखाते हैं कि जो कोई भव्य पुरुष अपनी आत्माके अर्थ इस रीतिसे देवका स्वरूप विचारे कि श्री अरिहन्त देवकी उत्पन्न हुई जो असंख्यात प्रदेशमें निरावर्ण अर्थात् आवर्ण करके रहित उस सर्वशक्तिको चिन्तवन करे और अपनी सत्ताको भी वैसाही विचारे अर्थात् प्रभूकी प्रगट भई हुई निरावर्ण प्रभुताको और अपनी छिपी हुई सत्तागत प्रभुता

इन दोनोंका तुल्य आरोप(मिलाना)करे और जो उनकी प्रगट सत्ता और अपनी दवी हुई सत्तामें जो कुछ तुल्य आरोप न वने उस न वननेका पश्चाताप करे और जितनेका तुल्य आरोपन अर्थात् परमातम धर्म उत्पन्न हुआ होय उसका बहुमान करे। यद्यपि प्रभूसे अपना द्रव्य करके क्षेत्र करके काल करके भाव करके भेद कहता जुदा द्रव्य है तथापि सुजाती सत्ता साधर्मपनेमें अभेद है। इस रीतिसे सापेक्षपने जो प्रभूका बहुमान अपनेमें तुल्य आरोपन अपनी सत्ता प्रगट करने के वास्ते जो कोई भव्यप्राणी ऐसा विकल्प सहित चिन्तवन अर्थात् विचार करे सो संग्रहनयसे साधन रूप अपने कल्याण का हेतु है इस रीतिसे दूसरा अंक हुआ अब अत्युत्तम साधन रूप संग्रहनय तीसरे अंककी व्यवस्था कहते हैं कि जिस वक्त में जो कोई भाव मुनि (भाव साधू) है सो ऐसा जानता है कि मेरी आतमसता यद्यपि आवर्ण करके सहित है तो भी जो मेरी आत्माका गुण छता अर्थात् साश्वत है तिसको कोई दवाने वाला नहीं। ऐसा निरधार करके भाषण गत करे और स्वय सत्ता अवलम्बी शुद्ध धर्ममयी हो करके उसी ही आतम सत्तोंमे भाषण रमण एकत्व पने जो सत्ता के सन्मुख हो करके रहे और पहिले यह जीव कदापि स्वय सत्ता अवलम्बी नहीं हुआ था और अब अपनी स्वय सत्ताका अवलम्बी हुआ इसलिये इसने अपने उपादान कारणको स्मरण किया इसलिये यह संग्रहनय अत्युत्तम उद्रकृष्ट भाव साधन रूप सेवा है । यह तीसरा अंक हुआ अब इनमें पांच बोल उतार कर दिखाते हैं कि जिस भव्य जीव आत्मार्थी को अपने कल्यान करने की इच्छा होय वो प्राणी ऊपर लिखे हुए तीनों संग्रहनयमें जो तीन अंक

की व्यवस्था उसको यथावत जाने उसका नाम गेय है और अपेक्षा विना तो तीनों अंकोका लेख उपादेय अर्थात् ग्रहण करने के योग्य है। और साधन अपेक्षाको अंगीकार करे तो प्रथम अंक हेय है और जो उससे भी विशेष अत्युत्तम साधन अपेक्षाका अंगीकार करे तो पहला और दूसरा दोनों अंक हेय अर्थात् छोड़ने के योग्य है बाकी सब उपादेय है। उत्सर्ग करके तो आतम सिद्ध रूप कार्यके बास्ते साधन रूप तृतिय अंककी व्यवस्था को वारम्वार विचारे और उसीका एकाग्र तनमय होकर ध्यान करे। कदाचित् उस तीसरे अंककी व्यवस्था मे चित्त न लगे तो अपवाद मार्गसे उस उत्सर्ग मार्ग को सहाय देनेके वास्ते जो दूसरे अंककी व्यवस्था है उसको विचारे उसीमे बारम्बार मनन करे इस रीतिसे संग्रहनय मे ५ वोल कहे अव व्यवहार नय मे ये ही पांचों बोल उतार कर दिखाते हैं। सो पेश्तर व्यवहार नय और साधन रूप दोनोंका वर्णन करते हैं कि जव भगवतने आभरणादिक सब उतार कर सर्ववृत सामायक उच्चारण किया और पच मुष्टी लोच करके अनगार अर्थात् साधू बनगये और पांच सुमती तीन गुप्ती पालते हुए देशोंमें विचरने लगे और सब जीवोंकी आत्माको अपनी आत्माके समान जानने लगे और सदा सर्वदा समता भाव मे प्रवृत होते हैं। इस जगह कोई ऐसी शंका करे कि क्या जव सर्ववृत सामायक नही उच्चारण किया था उस वक्त उनका समता परणाम न होगा इस शंकाका समाधान है कि सत्ता और अन्तरंग परणाम से तो भगवत तीन ज्ञान सहित गर्भमे आते हैं। तभीसे समता भाव रहता है परन्तु प्रत्यक्ष देखने में जव तक ग्रहस्थ आश्रम में रहे तव तक मात॰

पिता पुत्र कलित्रादि सम्बन्धियोंसे अथवा राज काज सम्बन्धी आदिक कार्यो में प्रवर्त होनेसे वाह्यरूप समता परिणाम देखने में नहीं आता इसलिये यह व्यवहार नयवाला वाह्य गुण प्रत्यक्ष देखे विदून माने नहीं जो, गुण वाह्य देखने मे आवे उसीको अंगीकार करे इसी लिये इसको व्यवहार नय कहते हैं इस रीति से प्रथम अंक कहा, अब दूसरे अंकमें साधन रूप सेवा दिखाते हैं कि अपना क्षय उपसम भावी जो ज्ञान दर्शन चारित्र वीर्य तिसके मध्य विषय प्रीति सहित श्रीअरिहन्तदेवकी शुद्ध स्वरूप सम्पदा अर्थात् केवल ज्ञान केवल दर्शनादि अनन्त चतुष्टय अथवा उपकार सम्पदा कि जिससे भव्य जीवोंको देखने अथवा सुनने से कल्याण हो सोही दिखाते हैं। कि ३४ अतिशय ३५ वाणी ८ महा प्रतिहार सम्पदा संयुक्त भव्य जीवोंके वास्ते देशना अर्थात् धर्म कथन रूप जो भगवतका वचन सो शुध्द उपकारी पना जाने और इन्हीं मे उपयोग रक्खे और कदापि श्रीप्रभूजी की प्रभुताको भूले नहीं और उस प्रभूकी प्रभुतामें ही सदा बहुमान करे क्योंकि श्री बीतराग सर्व से अधिक उतकृष्ट जाने और उसी भक्तिमें वीर्यको लगावे अर्थात् भक्ति विषय ही अपनी शक्ति अनुसार वीर्यका उद्यम करे तथा श्रीअरिहन्तदेवके गुण विषय एकत्व रमण तनमयपनो प्राप्ति करके रहे इस जगह जो क्षय उपसमी आतम गुणकी प्रवृत्ति भापणादिक जो गुण सो सर्व श्रीअरिहन्त भगवंत परमात्माकी अनुयायी करे इसलिये इसको शुभ व्यवहार साधन रूप सेवना है इस रीतिसे दूसरा अंक कहा अब] तीसरे अंकमे अत्युत्तम शुध्द साधनकी रीति दिखाते हैं कि जिस वक्तमें जो भव्य जीव अपनी आत्माके

अर्थके वास्ते साधक दिशामे अपरिमित मुनिराज सातवें गुण-स्थानकी अवस्थामें प्राप्ति होकर स्वय स्वरूप अवलम्बी उपादान कारणताको अंगीकार करे और उस अवस्थामें आत्माकी परिणाम प्रवृत्ति ग्राहकता व्यापकता कर्ता भोगता आदिक सर्व अपने स्वय स्वरूप मे लगे तब वो अन्तरंग वस्तुगत जो व्यवहार सो वस्तु स्वरूप मे होय इसलिये इसको व्यवहार नय अत्युत्तम उत्कृष्ट साधन रूप भाव सेवना कहिये अब इसमें भी ५ बोल उतार कर दिखातेहैं,कि ऊपर लिखे तीनों अंकको जानना सो तो गयहै, अपेक्षा विना तो इस जगह भी ज्ञेय कुछ नहीं है किन्तु उपादेय है, जो साधनकी अपेक्षा करे तो पहला अंक ज्ञेय है उससे भी विशेष शुद्ध साधनकी अपेक्षा करे तो दूसरा अक भी ज्ञेय है, केवल तीसरा अंक उपादेय अर्थात् ग्रहण करनेके योग्य है, और उत्सर्ग मार्गसे तो जो कोई भव्य जीव अपनी आत्माका कल्याण करने वाला होय सो तृतिय अंकके लेखको वारम्वार विचार रूप मनन करे अथवा एकाग्र होकर उसीका ध्यान करे कदाचित् ऐसा नहो सके तो अपवाद मार्गसे जो हमने दूसरे अंकमें व्यवस्था लिखी है. उस व्यवस्थाको वारम्वार विचारे अथवा ध्यान करे इस रीतिसे इस व्यवहार नयमें ५ वोल कहे, अव ऋजु सूत्र नयमे येही पाच वोल उतारनेके वास्ते पेश्तर ऋजु सूत्र नयका स्वरूप अथवा साधन रूप व्यवस्थाको लिखते हैं, कि जव भगवत अपनी आत्माका अन्तरंग उपयोग देकर आठवें गुणठाणेसविकल्प प्रथक्त्वसे पर विचार शुक्ल ध्यानके प्रथम पायेमें आतम स्वरूप विचारने लगे क्यो कि यह ऋजुसूत्र नय वाला भूत भविष्यत कालकी अपेक्षाको नही लेता है केवल एक

वर्त्तमान कालकी अपेक्षाको लेता है और वक्र (टेढे) भावको छोडकर केवल सरल स्वभावको अंगीकार करता है इसीलिये इस का नाम ऋजुसूत्र है ये पहला अंक हुआ अब दूसरे अंककी व्यवस्था कहते हैं कि जो कोई भव्य प्राणी श्रीपरमात्मा अयोगी अलेसी अविकारी अकषाई निरंजन निराकार आदि गुणको आदर सहित अवलम्बन करके अपना जो अन्तरंग परणाम आतम द्रव्यक्षय उपसमी पारिणति सामान्यचक्र भावरूप तनमय पने करे और कदापि न बिसरे ऐसा स्मर्णपना और तद् उपयोग रहे जहां शुद्धि धर्म ध्यान रूप अवलम्बन करके साधे तहां शुद्धि ऋजुसूत्र नय साधन रूप है क्यो कि यह आतम साधन रूप उत्कृष्टा भाव साधनका कारण है इस रीतिसे दूसरा अंक हुआ अब तीसरे अंककी व्यवस्था कहते हैं, कि जो कोई भव्य जीव अपनी आत्माका कल्याण करने वाला अपनी आत्माको क्षेपक श्रेणी पदमें आरूढ करके अपनी आत्मिक शक्तिको प्रगट करे और अन्य अर्थात् दूसरेकी सहायता विदून केवल अपनी आत्मिक शक्तिसे अपने गुण जो त्रोधान (दबेहुए) थे उनको आवर भाव प्रगट) करे उसीका नाम उत्कृष्ट साधन ऋजुसूत्र नय है इस रीतिसे तीसरे अककी व्यवस्था कही अब इस ऋजुसूत्र नयके तीनों अंकोंमें ५ बोल उतार कर दिखाते हैं, कि ऊपर लिखे तीनों अंकोकी व्यवस्थाको यथावत जानना सो तो गेय है और साधन अपेक्षाके विना इस जगह भी कुछ ह्येय नहीं किन्तु तीनोंही अंकोकी व्यवस्था उपादेयहै और जो जिज्ञासुसाधन अपेक्षाको अंगी कार करे तो प्रथम अंक ह्येयहै और जो इससेभी अति उत्तम साधनवाला जिज्ञासु अति उत्तम साधनके वास्तेप्रथम अंक और दूसरा अंक दोनोको

हेय अर्थात् छोडे केवल तृतिय अंकको उपादेय अर्थात् ग्रहण करे इसी रीतिसे हेय गेय उपादेय कहा, अब उत्सर्ग मार्ग सुनों कि जो अति उत्तम साधन करने वाला जिज्ञासु है वह तीसरे अंककी व्यवस्थाका ध्यान करे अथवा बारम्बार विचार रूप मनन करे कदाचित् इस तीसरे अंककी व्यवस्थामे चित्त न लगे तो अपवाद मार्गसे दूसरे अंककी व्यवस्थाको बारम्बार मनन रूप विचार करे अथवा ध्यान करे इस रीतिसे पांचो बोल कहे अब शब्दनयमें भी इन्ही पांचो बोलोको उतारकर दिखाते हैं सो प्रथम शब्द नयका स्वरूप लिखते हैं कि जब क्षीण मोही बारहवे गुण ठाणेको प्राप्त हुए तब एकत्व वितर्क अप्र बिचार नामा दूजे पायेमें स्थित होकर चार घन घाति कर्मको क्षय करते हैं इसरीतिसे शब्द नय वाला मानता है और इस शब्द नयके नाम स्थापना द्रव्य और भाव यह चार भेद अर्थात् निक्षेपण हैं सो तो शब्दार्थ अपेक्षासे है परन्तु शब्द नयका पर्यार्थकको अपेक्षासे कोई भेद है नहीं इस रीतिसे इस शब्द नयमें प्रथम अंक हुआ अब दूसरे अङ्ककी रीति कहते हैं कि जो भव्य प्राणी साधन अवस्थाको अङ्गीकार करे वो जीव श्री वीतराग सर्वज्ञ देव प्रभूरूप शुध्द द्रव्यको अवलम्बन (सहारा) करके अपने भाव मुनि तत्वरुचि होकर दर्शन ज्ञान चारित्र यह रत्नत्रिय मयी परिणामके विषय करके प्रथकत्व वितर्क सपर विचार रूप शुकल ध्यान पने परिनवावे अर्थात् लगावे तब यह जीव शब्दनयसे साधनरूप सेवनाहोय क्योंकि ऋजु सूत्र नयमे तो प्रशस्ति उद्देक सहित आरिहन्त गुणकी इष्टतादिक परिणाम में सहाय कारी रहती है और जहा शब्द नय होय तहां प्रशस्ति अवलम्बनका कुछ काम पडे नहीं क्योंकि साधक जो

भव्य जीव सो अपने गुण में सर्व प्रभूके गुण हो एकत्वता करके स्वय रूप एकत्वता पावे और शुकल ध्यानकी शुध्दताको पारिनवे तब शब्दनय साधन रूपभाव सेवना होवे इस जगह निमित्त पूर्वक आरंभ है इसलिये इस व्यवस्थाके ध्यान करने वाले जीवको साधन रूप भाव सेवना कही अथवा साधन रूप होनेसे इसीको अपवाद कहते हैं इस रीतिसे दूसरा अंक हुआ अब तीसरा अंक कहते हैं कि जो भव्य जीव आत्मार्थी जिस वक्त आत्मामें यथाख्यात ख्यायिक चारित्र प्रगट होय तव जो चारित्र के सहाय से प्रगट हुई जो आत्म शक्ति वह आतम शक्ति कैसी है कि शुध्द अकषाई असंगी निषप्रेह रूप शुध्द निर्मल जिससे शुध्द धर्म हर्ष (हुलास) पावे और चारित्रकी सहायसे जो वीर्य आदिक कषाय अर्थात् क्रोध मान माया आदि अनुयायी फिरता था सो उस कषाय आदिकसे उलट कर सर्व आत्मा रमणीमें रमणे लगा यह धर्म जितना हुलास (हर्ष) पावे सो सर्व शब्दनय से अति उत्तम भाव सेवा रूप है क्योंकि इस जगह दूसरेकी सहाय बिना केवल अपनी ही आतम शक्तिसे स्वय रूप रमणा है इस लिये इसको अति उत्तम साधन रूप भाव सेवा कही इसरी-तिसे तीसरा अङ्क कहा, अब इस जगह भी पांचो बोल उतार कर दिखाते हैं। कि ऊपर लिखे हुए तीनों अङ्कोके स्वरूपको जानना सो तो गेय है और बिना अपेक्षाके इस जगह भी ह्येय कुछ नहीं और जो जिज्ञासु साधन अपेक्षा अङ्गीकार करे तो प्रथम अङ्कको ह्येय करे और बाकी सब उपादेय रक्खे और जो इससे भी अति उत्तम साधनेवाला जिज्ञासु दो अङ्कको ह्येय अर्थात् छोडे और तीसरे अङ्कको उपादेय अर्थात् ग्रहण करे और उत्सर्ग मार्गमें तो जो हमने तीसरे अंकको व्यवस्था कही है उस व्यवस्थाको एका

न्तमे बैठकर एकाग्र चित्तसे ध्यान करे अथवा एकाग्र चित्तसे वारम्बार विचार रूप मनन करे जो इसमें चित्तकी वृत्ति न ठहरे तो इस अति उत्तम साधनका जो कारण अपवाद मार्ग उस अपवाद मार्गमें जो दूसरे अककी व्यवस्था है उसका ध्यान करे अथवा वारम्वार विचार रूप मनन करे इसरीतिसे शब्द नयमें ५ बोल कहे अब सम्भ्रूढनयमें येही पांच बोल कहनेके वास्ते प्रथम सम्भ्रूढ़ नयका स्वरूप कहते हैं कि जब चार घन घाति कर्मको क्षय किया उसी वक्त केवल ज्ञान, केवल दर्शन होकर लोकालोकके भूत भविष्यत, वर्तमान कालसे स्वरूपको देखते हैं ज्ञानसे जानते हैं इस रीतिसे सम्भ्रूढ़नयकी व्यवस्था कहा सो यह प्रथम अक पूरा हुआ अब द्वितीय अक कहते हैं कि जो भव्य प्रानी साधक दिशा वाला जीव उस आठवे गुणठाणेसे दशवे गुणठाने तक ऊपर पहुचा और शुकल ध्यानके प्रथम पायेके अन्तमें आया उस वक्त परम निर्मल भाव हुआ सो उस वक्तमे जितनी आतम गुणकी साधना करता २ योग वीर्यकी सहायसे साधकता हुई सो सर्व अपवाद रूप कारण है क्योंकि देखो शुद्ध व्यवहार विचारनेसे तो योगधर्म आत्माके छोड़ने जोग्य है इस लिये आत्मा उसको छोडे परन्तु उस वक्तमें योगधर्म भी कारण रूप कार्यका साधन रूप होनेसे कारनीक ग्रहण किया है परन्तु स्वय रूप मध्ये नहीं जो वस्तु कारण रूप शास्त्रोमें कहकर ग्रहण करी है सो सर्व कार्य्यकी सिद्धिके वास्ते हैं इसरीतिसे यह सम्भ्रूढ नयसे साधन रूप भाव सेवना कही और दूसरा अक पूरा हुआ अब तीसरे अककी व्यवस्था कहते हैं कि जो भव्य जीव जिस वक्त अपनी आत्माकी शक्तिसे सर्व घन घाति कर्मोंको क्षय करके अनन्त ज्ञान अनन्त दर्शन; अनन्त चारित्र,

अनन्त वीर्य ये चार अति उत्तम मोटे अनन्तको प्रगट करे और इन चार गुणोंके सहाय करनेवाले जो दूसरे वक्तव्य तथा अवक्तव्य अर्पत अनार्पत अनन्त स्वय धर्मी गुण प्रगट होय और आत्मा आनन्दी होय तव यह सम्भ्रूढ़ नयवाला अति उत्तम साधन रूप भाव सेवा कही इस रीतिसे तीसरा अंक पूरा हुआ अब इस संभ्रूढ नयमें भी पांच बोल उतार कर दिखाते हैं, कि ऊपर लिखी तीनों अककी व्यवस्थाको जानना सो तो गेय है, और विना अपेक्षाके तीनों अंक उपादेय हैं, हेय कुछ नहीं और जो आत्मार्थी साधन अपेक्षाको अंगीकार करे तो प्रथम अंक हेय है विशेप अपेक्षासे दूसरा अंक भी है, बाकी सब उपादेय है, उत्सर्ग मार्गसे जो जीव आतम शक्तिको प्रगट करने वाला तीसरे अंककी व्यवस्थामे लय होकर कर्मोंको क्षय करे तवहीं सम्भ्रूढ नयवाला उत्सर्गमार्गसे भाव सेवना साधन रूप मानता है, जो इस तीसरे अंककी व्यवस्थामें लय होनेकी शक्ति न होय तव जो हम दूसरे अंकमें व्यवस्था लिख आये हैं, उस व्यवस्थाको एकाग्र चित्त होकरके एकान्तमे बैठकर ध्यान रूप बारम्बार विचार करे इसी रीतिसे अपवाद मार्ग संभ्रूढ नयमें कहा अब इस संभ्रूढ नयमें ५ बोल कहनेके अनन्तर एवंभूत नयमें ५ बोल उतारनेके वास्ते पेश्तर एवंभूत नयका स्वरूप कहते हैं कि जब भगवतको केवल ज्ञान, केवल दर्शन उत्पन्न हुआ उसी वक्त ६४ इन्द्र आयकार चार निकायके देवतोने मिलकर समोसरणकी रचना करी और आठ महा प्रतिहार संयुक्त सिहासनके ऊपर भगवत विराजमान हुए तीन छत्र सिरके ऊपर ढले हुए इन्द्र चवर करते हुए तीनों तरफ तीन विम्ब सहित भगवत विराजमान होते हुए ३४ अतिशय ३५ वाणी कर वारह परखदाके

सामने देशना देते हैं, उस वक्त एवंभूत नय वाला देवमाने इस रीतिसे प्रथम अंक हुआ अब दूसरे अंककी व्यवस्था कहते हैं कि जिस वक्तमें जो कोई भव्य जीव आतमशक्तिके जोरसे शुकल ध्यानके दूसरे पायेमें एकत्व वितर्क अप्र विचार रूप ध्यानमें लीन होकर भाव मुनिपनेकी निर्विकल्प समाधीमें लगकर अपने स्वरूपको एकत्वपनेसे परिणामे तब कारण रूप साधनाका सम्पूर्ण अंग पूरा होगया इसलिये इसको एवंभूत नयसे साधन रूप भाव सेवना कही अब इस जगह कोई ऐसी संका करे कि तुमने क्षीण मोह बारहवें गुणठाणेमे सेवना रूप एवंभूत नय पूरा कर दिया परन्तु साधना तो अयोगी गुणठाने तक है फिर बारहवेंमें क्यों पूरी करी इस शंकाका समाधान ऐसा है कि हमने बारहवें गुणठाणेमें जो एवंभूतनयसे जो साधना पूरी करी सो उस साधना पूरी करनेका अभिप्राय यह है कि कारण रूप साधनाका अंग पूरा किया और इसी साधनाको अपवाद भी कहते हैं और जो अयोगी गुणठाने तक साधना है, सो अति उत्तम शुद्ध व्यवहार उद्कृष्टी कार्य रूप साधना है, इस लिये उस अति उत्तम उदकृष्टी साधनाका अंग पूर्ण नहीं किन्तु शुभ साधन रूप अपवाद मार्ग बारहवे गुणठाणे एवं भूतनय कहा इस जगह शुभ साधन रूप अपवाद साधनाका अधिकार है इसलिये शुभसाधन अपवाद रूप साधन पूरा हुआ अब इस जगह कोई ऐसी शंका करे कि ममता करिके रहित निर्मोही अवस्था में क्या अपवाद है सो तुमने अपवाद का नाम लेकर एवंभूत नय पूरा किया इस शंकाका समाधान ऐसा है कि इस जगह शुकल ध्यानके दूसरे पायेमें सेवाका एक आतम धर्म रखने का प्रयोग है क्योंकि देखो एक तो अभी

संयोगी वीर्य उदईक अनुगतका सहाय है दूसरा श्रुतज्ञान का अव-लम्बन है और श्रुतज्ञान क्षय उपसमी है वो श्रुतज्ञान उद्कृष्ट उत्स-र्गो में मूल आतम वस्तु धर्म नही और इस श्रुतज्ञानका अवलम्बन है इसलिये इस निर्मोही बारहवे गुणस्थानक मे एवंभूत नयसे शुभ साधन कारण रूप अपवाद भाव सेवना कही इस रीतिसे दूसरा अंक पूरा हुआ अब तृतिय अंकमें जो कि अति उत्तम साधन है जिसको जैनमतमें उत्सर्ग साधन कहते हैं । उसीकी व्यवस्था दिखाते हैं कि जिस वक्तमें जिस भव्य जीवने सर्व आतम शक्ति प्रगट किया और चार अघाती कर्म अर्थात् वेदनी आयुनाम और गोत कर्म जिस वक्त पूरे हुए उस समयमें सैलेसी करण कर के अपने आतम प्रदेशोका घन (समूह) करे और अयोगी केवली होय तब एवंभूत नय वाला अति उत्तम उद्कृष्ट भाव सेवना कहे इस जगह कोई ऐसी शंका करे कि मोक्षके विषय एवंभूत क्यों नहीं कहते तिसका सन्देह दूर करनेके वास्ते ऐसा उत्तर देना कि भो देवानु प्रियमुक्त आतमा तो सिद्ध है । सो सिद्ध परमात्माको तो कोई नवीन कार्य करना है नही और अयोगी केवली के तो सिद्ध रूप कार्य करना है इसलिये जितना कार्य अधूरा है उतना ही कार्य की सिद्धिके वास्ते साधन जो साधन है सोही शुद्ध सेवा है । इस लिये साधनाका अन्त उद्कृष्ट रीतिसे अयोगी केवली गुण ठाणेमें पूर्ण हुआ इसलिये अति उत्तम शुद्ध साधनका पूर्ण अंग अयोगी गुनठाने तक एवंभूत नयकी व्यवस्था तीसरे अंकमें कही अब इसमें भी ५ बोल उतार कर दिखाते हैं, कि ऊपर लिखी हुई तीनों अंककी व्यवस्थाको यथावत जाने उसका नाम तो गेय है, और विना अपेक्षाके ऊपर लिखी व्यवस्थामें ह्येय कुछ है नही केवल

तीनों अंक उपादेय हैं और जो साधन अपेक्षाको अंगीकार करें तो प्रथम अंक ह्येय है और दूसरा तीसरा उपादेय है और जो निर आलम्भ होकर साधनाकी अपेक्षा करे तो पहला और दूसरा अंक ह्येय अर्थात् छोडनेके योग्य है केवल तीसरा अंकही उपादेय अर्थात् ग्रहण करनेके योग्य है इसरीतिसे इस जगह गेय, ह्येय, उपादेय जानो (प्रश्न) आपने जो सातो नयमे वर्णन किया सो विना अपेक्षाके तीनों अंकोको सव जगह उपादेय बतलाया और ह्येय न कहा और अपेक्षासे ह्येय वतलाया सो अपेक्षा लेनेसे ह्येय कहनेका प्रयोजन क्या है उसको समझाइये (उत्तर) भो देवानु प्रिय इस वीतराग सर्वज्ञ देवका जो स्याद्वाद रूप सिध्दान्त है सो सर्व अपेक्षासेही कार्य्य सिध्द होता है क्यो कि बिना अपेक्षाके व्यवहार नही और व्यवहारके विना कार्य्य सिध्द होवे नहीं और व्यवहार है सो सह पेक्छित है विना अपेक्षाके व्यवहार झूठा है क्यो कि देखो श्रीआनन्दघनजी १४ वें श्रीअनन्त जिनके अस्तवनकी चौथी गाथामें ऐसा कहा है कि " वचन निर्पेक्ष व्यवहार झूठे । वचन सापेक्ष व्यवहार साचो । वचन निर्पेक्ष व्यवहार संसार फल । सांभली आदरी कांय राचो " ॥

इस लिये हे भोले भाई जिन्होंने श्रीवीतराग सर्वज्ञ देवका स्याद्वाद मत अंगीकार किया है और गुरूकुलवास आतम अनुभवके जानने वाले शुध्द प्रूपक अपेक्षाके विना कोई वचन न निकाले हा अलवत्ता दु.ख गर्भित मोह गर्भित वैराग्यसे जिन्होंने जिन लिंगको लेकर अपनी आत्माको पण्डित (गीतार्थ) दिखानेके वास्ते वस्तु गत धर्म अथवा कर्त्ताके अभिप्राय जाने विना निर्पेक्ष वचन निकालते हैं सो वे जिन आज्ञाके विराधक हैं केवल

इस भवमें मूर्ख मंडलीके उपदेशदाता बनकर दुर्गतिमें प्राप्ति होंयगे इस लिये बिना अपेक्षाके जो वचन कहना सो बीतरागकी आज्ञासे वाहर है इस लिये मैंने भी अपेक्षा लेकर वर्णन किया है और जो तुमने कहा कि सर्व जगह तीनो अंक उपादेय कहे उसका प्रयोजन ऐसा है कि प्रथम अकमे तो केवल देवका स्वरूप है और देवकी साधन अवस्थाका कथन है सो जब तक हम उस देवको उपादेय अर्थात् ग्रहण न करेगे तब तक किसी जीवका कार्य सिध्द न होगा सो ही दिखाते हैं कि जो जीव अपनी आत्माका कल्यान करना चाहता है वो जीव प्रथम देवके स्वरूपको ग्रहण करे और ऐसा विचारे कि यह बीतराग परमदेव तरण तारण भव दुःख निवारण दीनदयाल कृपानिधि निष कारण उपकारी मेरेको तारेगा इस हेतु से प्रथम उसको उपादेय किये विदून उसके गुणोंकी पहचान क्यों कर हो और गुणोंके विना उसकी भी पह-चान न हो इसलिये पेश्तर देवको उपादेय करके उसके गुणो को जाने जब गुणको जानेगा तो आत्मार्थी भव्य जीव विचार करेगा कि जिसमें ऐसा गुण है वो कौन वस्तु है। मेरी सजाती है वा वि जाती है। वि जाती तो उसके विचार में ठहरे नहीं जब सजाती ठहरा तो विचार हुआ किमैं द्रव्य करके तो एकहूं परन्तु इसका गुण सब प्रगट है और यह इस प्रभुताको प्राप्त हुआ और मैं ऐसाही बना रहा तो इसका कारण क्या है उस कारणको विचारने लगा तो ऐसा मालूम हुआ कि इसके गुण तो आवर भाव अर्थात् प्रगट होगये हैं और मेरे गुण त्रोधान अर्थात् छिपे हुये हैं। सो मेरे छिपे हुए गुणोंको जनाने वाले इस बीत-राग परमात्मा के प्रगट गुण हैं। इसलिये ये बीतराग अरहन्त

देव मेरे गुणको जनाने में निमित्त हुआ अब जिस रीति से इन्होंने साधन करके अपना गुण प्रगट किया है उसी रीति से मैं भी साधन करूं। इस साधनकी अपेक्षा होनेसे ऐसा विचार हुआ कि यह वीतराग सर्वज्ञ देव निमित्त कारण होकर मेरेको तारने वाला है परन्तु उपादान कारण मेरी आत्मा है इस विचारमें जब दृढ़हुआ तबप्रभूके गुणोंकी और अपने गुणोंकी पेश्तर एकताका विचारकिया कि प्रभूका गुणतो आवरभाव है और मेरा गुण त्रोधान है परन्तु है बराबर ऐसा तुल्य आरोप करनेसे वो प्रथम अंकमें जो देवका स्वरूप कहा था सो ह्येय हुआ। क्योंकि देखो जो पेश्तरही उसको उपादेय न करते और हेय कर देते तो अपने गुण साधनेका विचार कदापि न होना इसलिये पेश्तर उस देव के साधन समेत गुण को अंगीकार किया तो अपने गुण प्रगट करनेकी इच्छा हुई जब अपने गुण साधनेकी इच्छा हुई तो प्रभूके साधन रूप को छोडने की इच्छा स्वतह ही बन गई इस रीतिसे प्रथम तीनों अंकाको उपादेय कहा जब साधनकी अपेक्षा हुई तब प्रथम अंक हेय कर दिया इस रीति से जो साधन अवस्था करनेसे जो गुण आत्माका त्रोधान था सो प्रगट होनेसे उस साधन अवस्था को भी हेय कर दिया क्योंकि दूसरेका सहारा जभी तक है कि जब तक अपनेमें पूरी कुव्वत न हो जिसमें अपनी कुव्वत अर्थात् शक्ति है वह दूसरेका का सहारा नहीं लेता इसी रीतिसे कार्य कारण की व्यवस्था जानो और हेय उपादेयकी व्यवस्था जानो कि पेश्तर तो उसको उपादेय करते हैं और पीछे फिर हेय कर देते हैं सो इसका दृष्टांत दिखाय कर दृष्टांत को समझाते हैं कि जब जैसे किसान लोग

कृषि (खेती) करने वाले पुरुष जो चना आदि धान पैदा होता है उस वक्तमें खाकला (भूसा) दरख्त सहित सबको इकट्ठा करते हैं कदाचित् वे लोग केवल धानको इकट्ठा करते तो कदापि हाथ न लगे इसलिये वे लोग जैसा खेत में भूसा समेत धान खड़ा है उसको उपादेय अर्थात् ग्रहण करलाते हैं। फिर उसको एकजगह रख कर किसी जगह कोई तो लाठियों से कूट कर वारीक करते हैं। और कोई उसके ऊपर बैलोंको पूरे २ कर बारीक करते हैं। जब उस में धान और खाकला जुदा २ होता है तब उस धानको ग्रहण करते हैं खाकला (भूसा) को ह्येय अर्थात् छोड़ देते हैं सो वो धान भी छोंतरा समेत ग्रहण किया जाता है जब उसकी कोई अति उत्तम चीज वनाई जाय उस वक्त मे उसका चना आदिकका छोंतरा (छिलका) को भी ह्येय अर्थात छोड़ देते हैं केवल मिगी रूप दाल उसको ग्रहण कर लेतेहैं इस रीतिसे इस दृष्टान्तको समझे कि जब तक वो खेतमें से घास फूस दरख्त समेत ग्रहण नहीं करता तो उसके हाथ धान कदापि न लगता इसलिये पेश्तर जो उपादेय है सो अपेक्षा से ह्येय हो जाता है अब इस जगह कोई ऐसा प्रश्न करे कि चना को तो बिना दरख्त घास फूसके इकट्ठे बिना केवल उस खेतमें खड़े हुए चनाके दरख्तमें से वो चना इकट्ठे कर सक्ता है तो फिर तुम्हारा दृष्टान्त क्योंकर मिलेगा (उत्तर) हे भोले भाई विवेक शून्यबुद्धि विचच्छण तेरेको इस प्रश्नके करनेमें लज्जा न आई कि चनाके मध्ये जो तेने कहा सो तो मेरे सरीखा पुरुष अपनी वचन सिद्धि करनेके वास्ते अत्यन्त परिश्रम उठाय कर विना दरख्त वा घास फूस के केवल चना इकट्ठे कर सक्ता है परन्तु जो गेहूं बाजरी ज्वार चावल कोदों मूंग उर्द आदि धान को तो बिना घास फूसके दरख्तके कदापि इकट्ठा नहीं कर सक्ता

इस लिये तेरी शुष्क तर्क आत्माके अकल्यानकारी दृष्टांन्तके अभिप्रायको विना समझे उन्मत के बचन जैसी हुई. सो अब इस अज्ञान दशाको छोड़ सत गुरुके बचन को समझ कर हमने जो दृष्टान्त दिया है उसके एक अंशको लेकर सन्देहको दूरकर ऊपर लिखे हुए लेखको समझो और दृष्टान्तसे दृष्टान्तको मिलाओ मिथ्यात को गमाओ सत गुरुओंके बचन हृदयमे जमाओ नाहक तर्क क्यो उठाओ मूर्खाई क्यों दिखाओ इस अभिप्रायसे हमने पेश्तर तीनो अंकोको उपादेय कहा फिर साधन अपेक्षासे प्रथम अंकको हेय कहा और दूसरे तीसरे अंकको उपादेय कहा फिर जब आतम शक्ति बढ़ी और गुण प्रगट हुए तब दूसरे अंकको भी हेय कर दिया केवल तृतीय अंक उपादेय रहा जब अत्युत्तम उद्-कृष्ट शुद्ध साधन सम्पूर्ण हो चुका तब तृतीय अंक भी शेष में हेय होकर केवल आतम स्वरूप रहेगा इस हमारे तात्पर्यको समझो मिथ्या विकल्पोको वरजो जिससे संसारमे न उलझो केवल आतम गुणमें ही गरजो इस रीतिसे गेय, हेय, उपादेय कहा अब उत्सर्ग मार्गसे तो जो तृतीय अंककी व्यवस्थाहै उसमें लय होकर मोक्षमे प्राप्ति होय कदाचित् आयु नाम कर्मादि कुछ बाकी होय तो दूसरे अंककी कही हुई व्यवस्था उसी व्यवस्थामें वो जीव दृढ होकर अपने आतम विचार में रहता है यह अपवाद हुआ इस रीतिसे एवंभूत नयमे ५ बोल कहे सो इस नय आदिकोंमें तीन रीतिसे पांच २ बोल उतारकर दिखाये इस स्याद्वादका मजा कोई विरलेही लोगोने पाये मिथ्या जैनी कहाय फिर अज्ञान बीच छाय स्याद्वा-दका नाम लेत भोले जीवोंको वहकाय, रागद्वेष भरे वीतराग मार्गमें कहाये, नाम धरनेसे हुआ क्या केवल जन्म मरनको वढाये

जैन नामको धराय जैन धर्मको न पाये, आडम्बर दिखाय लोगोंको अपने जालमे फसाये, वीतराग धर्म कहें फिर रागद्वेषको वढाये, आप लड़े और लोगोंको लड़ाये लोगोंको उपदेश देंय आप समताको न लाये कपट क्रियाको दिखाय फिर उद्कृष्टे कहाये, पोथोंके भार गधा जैसे उठाये, वांचे सव ग्रंथ तौभी ज्ञानको न पाये, आप डूबे और लोगोंको डुवाये, ऊपरसे त्यागी और लोगोंके माल ठग खाये, वर्तमानका हाल किंचित यह जताये, इस रीतिसे ७ नय कहा अव सप्तभंगीमे पांच वोल उतारनेका किंचित स्वरूप लिखते हैं परन्तु अव्वल तो इस सप्तभंगीका समझना और घटाना कठिन है तैसेही गुरूकुलवास बिन वोलोंका समझना कठिन है सो प्रथम ७ भागोंमे पांचो वोल शामिल उतारते हैं कि इन सातो भागोंका जानना सोतो गेय है और बिकलादेशी इस जगह हो है और सकला देशी उपादेय है उत्सर्ग मार्गसे जो उपादेय है सो ही उत्सर्ग मार्ग है और अपवाद मार्गसे सातो भागोंको अंगीकार करे सो अपवाद मार्ग है, अव इन्हों सातो भागोंमें दूसरी रीतिसे दिखानेके वास्ते प्रथम सप्त भंगीका स्वरूप लिखते हैं कि प्रथम स्यात् अस्ति भांगा है स्यात् शव्दका अर्थ कहते हैं कि स्यात अव्यय है सो अव्ययके अनेक अर्थ होते हैं यदि उक्तं "धातुनां अव्यानां अनेक अर्थानी वोध्यानी" इस वास्ते स्यात् पद दिया जाता है स्यात् देव अस्ति स्व द्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल, स्वभाव करके अस्ति है यह प्रथम भांगा हुआ, स्यात् देव नास्ति देव जो है सो स्यात् नही है किस करके कि कुदेव करके सो कुदेवका द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव करके नास्ति है जो कुदेव करके देवमें नास्ति पना नहीं माने तो हमारा कार्य सिद्धहो नहीं हो क्यों कि

कुदेव में तो कुगति देनेका स्वभाव है और देवमें देवगति अर्थात् मोक्षही देनेका स्वभाव है जो देवमें कुदेवका नास्ति स्वभाव न होता तो हमारा मोक्ष साधन निमित्त कारण कभी नहीं बनता इस वास्ते 'स्यात् देवो नास्ति' यह दूसरा भांगा हुआ अब स्यात् अस्ति स्यात् नास्ति भांगा कहते हैं कि जिस समयमें देवमें देवत्वपनेका अस्तित्व है उसी समय देवमें कुदेवपनेका नास्तित्व पना है सो वह दोनो धर्म एकही समयमें मौजूद हैं इस वास्ते तीसरा भांगा हुआ अब स्यात् अवक्तव्य नाम चौथा भांगा कहते हैं तो स्यात् देव अवक्तव्य है अबक्तव्य नाम कहनेमें न आवे तो जिस समय देवमें देवत्वपनेका अस्तिपना है उसी समय देवमें कुदेवपनेका नास्ति पना है, दोनों धर्म एक समय होनेसे जो अस्ति कहें तब तो नास्ति पनेका मृषावाद आता है और जो नास्तिक हैं तो अस्तिपनेका मृपावाद अर्थात् झूंठ आता है क्योंकि दो अर्थ कहनेकी एक समयमें वचन की शक्ति नहीं कि जो एक संग दो वस्तु उच्चारण करें इस वास्ते अवक्तव्य है अब स्यात् अस्ति अवक्तव्य तो स्यात् अस्तिदेव अव-क्तव्य यह हुआ कि देवके अनेक धर्म अस्तिपनेमें हैं परन्तु ज्ञानी जान सकता है और कह नहीं सकता क्योंकि जैसे कोई गानेका समझनेवाला प्रवीण पुरुष गानेको श्रवण करके उस श्रोत्र इन्द्रियसे प्राप्त हुआ जो गानेका रस उसको जानता है परन्तु वचनसे यह ही कहता है कि आहा: क्या बात है अथवा शिरहिलानेके सिवाय कुछ नहीं कह सकता तो देखो उस राग रागिनीका मजा तो उस पुरुपके अस्तिपनेमें है परन्तु वचन करके न कह सके, इसी रीतिसे देवमें देवत्वपनेमे जानने वालेको देवत्वपना उसके चित्तमें अस्ति है परन्तु वचनसे न कह सके इस वास्ते स्यात अस्ति अवक्तव्य

पांचवा भांगा हुआ अब स्यात् नास्ति अवक्तव्य भांगा कहते हैं। स्यात् देव नास्ति अवक्तव्य तो नास्तिपना भी देवमें अस्तिपनेसे है परन्तु वचनसे कहनेमें नहीं आवे क्योंकि जिस समयमें देवका अस्तिपना है उसी समय कुदेवका नास्तिपना उस देवमें बने हुए को विचारनेवाला चित्तमे विचारता है परन्तु जो चित्तमें ख्याल है सो नहीं कह सकता इस लिये स्यात् नास्ति अवक्तव्य छठा भांगा हुआ, अब स्यात् अस्ति स्यात् नास्ति युगपद अवक्तव्य भांगा कहते हैं कि स्यात् देव अस्ति नास्ति युगपद अवक्तव्व तो जिस समय मे देवमें अस्तिपना है उसी समय कुदेवका नास्तित्वपना युगपद कहता एक कालमे अवक्तव्य कहता जो नही कह सके क्योंकि देखो मिश्री और काली मिर्चे घोटकर जो गुलाब जल मिलाकर बनाया जो पुरुष उस प्यालेको पीता है उस मिश्रीका और मिर्चेका एक समय में पीता हुआ स्वादको जानता है परन्तु उसके जुदे २ स्वभाव एक समय कहनेके समर्थ नहीं क्योंकि वह जानता तो है कि मिर्चका तीखापन है और मिश्रीका मीठापन है क्योंकि गलेमें मिर्च तो तेजी देती है और मिश्री मीठी शीतलताको देतीहै परन्तु दोनोंके स्वादको जानकर कह नहीं सके इस रीतिसे देवका स्वरूप विचारनेवाला देवमें देवत्वपनेका अस्ति और कुदेवत्वपनेका नास्ति युगपदको तो एक समयमे जानता है परन्तु कह नही सके इस करके स्यात् अस्ति नास्ति युगपद अवक्तव्य सातवां भांगा कहा, अब इनमे पांच वोल उतारते हैं कि जो ऊपर लिखे हुए प्रथम भांगेका स्वरूप, दूसरे भांगेका स्वरूप, तीसरे भांगेका स्वरूप चौथे भांगेका स्वरूप इसी अनुक्रमणसे जानना उसका नाम तो गेय है और इन सातो भागोंमे हेय कुछ है नही क्योंकि

"स्यात् अस्ति" "स्यात नास्ति" यह दो शब्द हैं और इन दोनो ही शब्दोंका अर्थ है जो इसमे से कोई अपेक्षा लेकर हेय करे तो उस हेयका केवल जानने मात्र होगा परन्तु लिखने मे वा कहने मे नहीं आय सकता क्योंकि अव्वल तो यह सात भांगे ही समझ कर प्रति पादन करना और जिज्ञासु ओंको समझाना बहुत काठिन है क्योंकि देखो शास्त्रकार ऐसा कहते हैं कि नय आदिकका समझना और घटाना सर्व पदार्थमें होता है परन्तु सिद्धमें नय नहीं घटती है और सप्त भंगी ,सिद्धमें भी घटती है अथवा नय आदिक द्रव्य मे घटती है गुण परजाय मे नही घटती और सप्तभगी द्रव्य मे वा गुणमे वा पर्याय में सबमे घटती है इसलिये इस स्याद्वाद रहस्यके जानने वाले आतम अनुभवके रसिया सूक्ष्म विचारसे अपेक्षा से हेयको समझ लेना किन्तु लिखनेके वास्ते हेय कुछ है नही दोनोका उपादेय है,,उत्सर्ग मार्ग करके तो स्यात्पदको अपने चित्त में विचारना, कि इस जगह कर्त्ताने स्यात् पद किस वास्ते दिया है और किस २ धर्मको यह स्यात पददोतन (प्रकाश) करता है कि अस्ति धर्मको स्यात् पद कहने वाला है कि नास्ति धर्मको स्यातपद कहने वाला है, अथवा अवक्तव्यको जानने वाला है इस रीतिका जो विचार सो उत्सर्ग मार्ग है और अपवाद मार्ग भी इस जगह है तो नही परन्तु बुद्धिमान जिज्ञासुके समझाने के वास्ते ऐसा कह सक्ते हैं कि स्यात् पदके अर्थको यथावत न जाने और भांगेको याद करे वो अपवाद मार्ग है इस रीतिसे यह सप्त भंगी में ५ बोल कहे, और यह सप्त भंगी नित्य, अनित्य, एक, अनेक, असत्य भिन्न अभिन्न वक्तव्य, भव्य, अभेव, भेद, अभेद इत्यादि अनेक रीतिसे

इस सप्त भंगीको उतारना उसीका नाम स्याद्वाद है इस रीतिसे ५७ बोलके ऊपर पांच२ बोल उतारकर दिखाया, किञ्चित् इस स्याद्वादका रहस्य बताया भव्य जीवोंके वास्ते देवका स्वरूप समझाया। गुरूकी कृपा से मैंने भी अनुभव इसका पाया। इस ग्रन्थ को देख कर आत्मार्थियोंका चित्त हुलसाया, चिदानन्द शुध्द देव गुण गाया, कर्मोंके फन्दको उठाया, निमित्त कारण बत लाया उपादान आतमको सुहाया, भव्य जीवोंके ग्रन्थ यह मन भाया, चिदानन्द अपने स्वरूप में समाया इस रीति से ग्रन्थको समाप्तः करनेकी इच्छा से अन्त मगल करता हूं, गुरूके चरणोंमें ध्यान धरता हूं ॥

॥ चौपाई ॥

शुध्द देव अनुभव गुण गाया ॥ पास फलौधी शरणमें आया ॥
किंचित जिन सेवा यह धाम ॥ ग्रन्थ समाप्त पूरन काम ॥

दोहा–कियो ग्रन्थ मनरंगसू उपजो मन आनन्द ।
चिदानन्द चिन्ता गई, मिटो जगत सब फन्द ॥
उन्नीसे बावन सदा, सम्वत लीजो जान ।
वैसाष सुदी तिथि छटे है, मंगलवार प्रधान ॥

चौपाई ।

सदा रहो यह ग्रंथ प्रवीना । भविक कमल सुख आतम चीना
उत्तम ग्रंथ इसे जो पढे । भवसागरमे कभी न पड़े ॥
जो यह ग्रंथ पढे मन लाई । मिथ्या मोह दूर होय भाई ॥
जन्म मरण सब दुख मिटि जाई । आतम गुण नित होय सवाई ॥

दोहा–उत्तम यह अब सीख है, क्षण २ करो विचार ।
गयो काल आवे नहीं, अनुभव देव विचार ॥

चिदानन्द रचना करी, अनुभव देव विचार ।
करे ग्रंथ इस मननका, आतम रूप निहार ॥
करे ग्रंथ अभ्यास जो, कटे सबी जंजाल ।
चिदानन्दयो कहत हैं, भविजन होव निहाल ॥

दोहा—श्रीचिदानन्द महाराजने, रचना करी बिशाल ।
कान्य कुब्ज कालीचरण, लिखो ग्रंथ तत्काल ॥
ग्राम वटेश्वर धाम है, तहसीली है बाह ।
जिला आगरा जानियो, मेरा वहां निवाह ॥

मुनि श्रीचिदानन्दजी की विरचितायां—
शुद्ध देव अनुभव विचार

जैन बुक डिपो.

हमने जैन भाइयोंके लाभार्थ तमाम जैनकी पुस्तकें और हर प्रकारका सामान सपलाय करने वास्ते यह डिपो खोला है। और ऐसी व्यवस्थाकी है कि हरएक चीज और पुस्तक हिफाजतके साथ और फायदेसे ग्राहकों को घर बैठे बिठाये मिलजावे। एक वक्त कोई भी वस्तु मंगाकर हमारे डिपो से आपको लाभ है या हानि इसका अनुभव तो करलीजिये. हमारे यहां सर्व सामान व पुस्तकें मिलेगी.

मैनेजर हिन्दीजैन (बुकडिपो)
हाथी बिल्डिंग कालकादेवी रोड
बम्बई. नं. २